अशो॰ नाटक की कुंजी

[ले०—ल॰ रामकृष्ण शास्त्री, हिन्दी प्रभाकर]

इसमें अशोक नाटक के अकों की कथा का सक्षेप, कठिन शब्दों के अर्थ, प्रधान पात्रों का चरित्र चित्रण तथा नाटक की आवश्यक परिभाषाएँ दी गई हैं। मू० ।)

व्याकरण की प्रश्नोत्तरी

[ले०—श्री भीष्मप्रताप शास्त्री, बी० ए० तथा कविराज रामलाल अग्रवाल हिन्दी प्रभाकर, विशारद]

सपादक—धर्मचन्द्र विशारद

इस पुस्तक मे हिन्दी का सारा व्याकरण बहुत आसान भाषा म प्रश्न और उत्तर के रूप मे समझाया गया है। विद्वान् सपादक न इसे हर तरह से विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बना दिया है। पुस्तक लेते समय सपादक का नाम अवश्य देख लें। मूल्य ।~)

व्याकरण का चार्ट

[ले०—श्रीयुत धर्मेन्द्रनाथ विद्यालकार]

इस चार्ट की सहायता से हिन्दी का सारा व्याकरण १० मिनट में दोहराया जा सकता है। ठीक परीक्षा के समय काम आने वाली चीज है। मूल्य =)

हिन्दी-विलास-चंद्रिका

या

हिन्दी-विलास की

अर्थात्

हिन्दी-विलास के कठिन शब्दों तथा पद्यों के विस्तृत अर्थ

टीकाकार

श्री केशवप्रसाद शुक्ल

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

लाहौर

दूसरा संस्करण] १९३८ [मूल्य १।।)

व्याकरण की प्रश्नोत्तरी

[ले०—श्री भीष्मप्रताप शास्त्री, बी० ए० तथा कविराज रामलाल अग्रवाल हिन्दी प्रभाकर, विशारद]

सम्पादक—धर्मचन्द्र विशारद

इस पुस्तक में हिन्दी का सारा व्याकरण बहुत आसान भाषा में प्रश्न और उत्तर के रूप में समझाया गया है। विद्वान् संपादक ने इसे हर तरह से विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बना दिया है। पुस्तक लेते समय सपादक का नाम अवश्य देख लें। मूल्य ।-)

भारतवर्ष के इतिहास की प्रश्नोत्तरी

[ले०—श्रीयुत जुगलकिशोर चतुर्वेदी, हिन्दी प्रभाकर]

इस पुस्तक में पानीपत की तीसरी लड़ाई तक का भारत का इतिहास प्रश्न और उत्तर के रूप में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी रत्न परीक्षा में पिछले कई सालों में पूछे गये प्रश्न उत्तर सहित देकर विद्वान् लेखक ने पुस्तक को और भी उपयोगी बना दिया है। पिछले कई सालों में रत्न परीक्षा के पाँचवें पत्र के प्रायः सभी प्रश्न इस पुस्तक के अन्दर से आते रहे हैं। मूल्य ।=)

दूसरे संस्करण में इस पुस्तक को प० भगवद्दत्त के इतिहास के अनुसार शुद्ध कर दिया गया है।

पुस्तक पर श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी का नाम और दूसरा संस्करण देख कर लें।

Printed by Jagdish Mitra at the Basant
... and the rest Printed and Published

तुलसीदास रामायण

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

तेहि अवसर—भृगुकुल-कमल-पतंगा=भृगु-वंश रूपी कमल के लिए पतंग अर्थात् सूर्य।

उसी समय शिव के धनुष का टूटना सुनकर भृगु-वंश रूपी कमल के लिए सूर्य (परशुरामजी) आये।

देखि महीप—लवा=बटेर। भूति=राख। त्रिपुण्ड=तिलक।

उन्हें देखकर समस्त राजा ऐसे सहम गये, जैसे बाज की झपट देखकर बटेर छिप जाते हैं। परशुरामजी के गोर-वर्ण शरीर पर भभूत (राख) बहुत शोभायमान है और विशाल मस्तक पर तिलक विराज रहा है।

सीस जटा—रिसिवस=क्रोधवश। अरुण=लाल। राते=लाल।

शिर पर जटा है और मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है, जो क्रोध के कारण कुछ लाल हो गया है भौंहे टेढ़ी हो गई हैं और आँखें क्रोध से लाल हो रही हैं। वे साधारण रूप में भी देखते हैं तो मालूम होता है कि मानों रुष्ट होकर देख रहे हैं।

वृषभ कंध—वृषभ=बैल। उर=छाती। कटि=कमर। तून=तरकस।

बैल के समान ऊँचे कन्धे हैं, छाती और भुजाएँ विशाल हैं, सुन्दर जनेऊ और माला पहने हुए हैं तथा बगल में मृगचर्म दबाये, कमर में मुनिवस्त्र (कौपीन) और दो तरकस बाँधे हुए हैं, हाथ में धनुषबाण तथा कंधे पर सुन्दर फरसा रखे हुए हैं।

सांत बेश—करनी=कर्म। भूप=राजा।

उनका वेश तो साधु-सन्तों जैसा है पर करनी (कार्य) कठोर है, जिससे उनके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा मालूम होता है,

मानो स्वयं वीर-रस मुनि का वेश धारण करके वहाँ आ गया हो, जहाँ सब राजा उपस्थित हैं।

देखत भृगुपति—भुआला=भूपाल, राजा।

परशुरामजी के भयकर वेश को देख, सब राजा भय से व्याकुल होकर उठ खड़े हुए और पिता सहित अपना-अपना नाम ले-लेकर सब दडवत् प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभाव—चितवहिं=देखते हैं। आइ=आयु। खुटानी=पूरी हो गई।

वे (परशुरामजी) जिसको प्रिय जान कर सहज स्वभाव से ही देखते हैं, वह ऐसा जानता है, मानों आयु समाप्त हो गई। फिर जनकजी ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम करवाया।

आसिस दीन्ह—पदसरोज=चरण कमल।

(परशुरामजी ने) आशीर्वाद दिया जिसे सुनकर सखियाँ प्रसन्न हुई और सीता को अपनी मडली मे ले गईं। फिर विश्वामित्र जी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयो (राम-लक्ष्मण) से उनके चरण-कमलो मे प्रणाम करवाया।

राम लखन—ढोटा=लडके।

विश्वामित्रजी ने कहा—ये दोनो भाई रामचन्द्र और लक्ष्मण, राजा दशरथ के पुत्र हैं। अच्छी जोडी जान कर परशुरामजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

बहुरि विलोकि—

फिर राजा जनक की ओर देख कर बोले,—कहो, यह इतनी भीड क्यो इकट्ठी हुई है। सब कुछ जानते हुए भी परशुराम अनजान की तरह से पूछते हैं, पूछते पूछते उनके शरीर में क्रोध भर आया।

समाचार कहि०—

जिस कारण से राजा आये हैं, जनकजी ने वह कारण

(सीता-स्वयंवर का हाल) कह सुनाया। उनके वचनों को सुनते सुनते परशुरामजी ने दूसरी ओर देखा, तो पृथिवी पर शिव के धनुष के टुकड़े पड़े हुए देखे।

अति रिस—जड=मूर्ख।

वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस प्रकार कठोर वचन बोले,—रे मूर्ख जनक, कह तो सही इस धनुष को किसने तोड़ा है? रे मूर्ख, उसको जल्दी दिखा, नहीं तो आज जहाँ तक तेरा राज्य है, उस सारी धरती को मैं हिला दूँगा।

अति डर उतर—त्रास=डर। उतर=उत्तर।

अत्यन्त भय से राजा जनक उत्तर नहीं देते (यह देख कर) कुटिल राजा मन में प्रसन्न हुए। देवता, मुनि नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सब के हृदय में भारी त्रास उत्पन्न हुआ और सब सोचने लगे।

मन पछताति—महतारी=माता। निमेष=पलक, क्षण।

सीताजी की माता मन में पछताती हैं, कि हाय, विधाता ने अब बनी बनाई बात बिगाड़ दी। परशुरामजी का स्वभाव सुनकर सीता को आधा क्षण कल्प के समान बीतने लगा।

सभय बिलोके—विषाद=दुख। भीर=संकट, कष्ट।

सब लोगों को भयभीत और जानकीजी को संकट में जानकर, जिनके हृदय में न खुशी है न दुख, वे श्रीरामचन्द्रजी बोले—

नाथ संभु-धनु—भंजनहारा=तोड़ने वाला। आयसु=आज्ञा।

हे नाथ, शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला आपका ही कोई एक दास होगा। क्या आज्ञा है मुझसे क्यों नहीं कहते? यह सुनकर क्रोधी मुनि रुष्ट होकर बोले—

सेवक सो—अरिकरनी=शत्रु का काम।

सेवक तो वह होता है, जो सेवा करे। जो शत्रु का काम करे उससे तो लड़ाई करनी चाहिये। हे राम, सुनो

यहाँ कोई कुम्हड़े की बतिया तो है नहीं, जो तर्जनी अंगुली को देखते ही मुरझा जाय। फरसे और धनुष-बाण को देखकर मैंने तो कुछ अभिमान के साथ कही है।

भृगुकुल समुझि—महिसुर=ब्राह्मण। सुराई=शूरता।

आपको भृगुवंशज (ब्राह्मण) समझ कर और गले में जनेऊ देख कर आप जो कुछ कहते हैं, उसे रोष रोक कर सहता हूँ। देवता, ब्राह्मण हरिभक्त और गौ, इन पर हमारे कुल के लोग शूरता नहीं दिखाते।

बधे पाप अपकीरति—अपकीरति=अपयश। कुलिस=वज्र।

इनको मार डालने से पाप होता है और इनसे हार जाने से अपयश होता है। इसलिये आप मारें तो भी आपके पाँव पड़ना चाहिए। करोड़ों वज्रों के समान तो आपके वचन ही हैं, फिर धनुष बाण और फरसा तो आप व्यर्थ ही उठाये फिरते हैं।

जो बिलोकि—गिरा=वाणी।

हे धीर महामुनि, मैंने जो (आपके क्षत्रिय के चिह्न) देखकर कुछ अनुचित कहा हो, उसे क्षमा कीजिये। लक्ष्मण की बात सुनकर क्रुद्ध हो भृगुवंश के रत्न परशुरामजी गंभीर वाणी बोले।

कौसिक सुनहु—घालक=नाश करने वाला। राकेश=चन्द्रमा।

हे विश्वामित्र, सुनिये, यह बालक मूर्ख और कुटिल है और काल के वश हो अपने कुल का नाश करना चाहता है। सूर्यवंश-रूपी चन्द्रमा का यह कलङ्क है और बिलकुल ही निरकुश, (उच्छृंखल) नासमझ और निडर है।

काल-कवलु होइहि—कवलु=ग्रास। खोरि=दोष।

यह क्षणभर में काल का ग्रास होगा, मैं पुकार कर कहता हूँ, फिर मेरा दोष नहीं होगा। तुम यदि इसे बचाना चाहते हो, तो मेरा प्रताप, बल और रोष, इसको बताकर मना कर दो।

लषन कहेउ मुनि—अछत=रहते हुए।

लक्ष्मणजी ने कहा—हे मुनि, आपका सुयश आपके रहते

दूसरा कौन वर्णन कर सकता है ? आपने अपनी करनी का अपने ही मुख से कितनी ही बार कई तरह से बखान कर दिया है।

नहिं सन्तोष तो—

इतने पर भी यदि सताप नहीं हुआ, तो कुछ और कहिये। क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिये। आपकी वीरता की वृत्ति (वर्ताव) है, आप धीर हैं, क्रोध-रहित हैं आप गाली देते शोभा नहीं पाते।

सूर समर—

शूर-वीर सग्राम में अपनी करनी (शूरता) दिखाते हैं, अपने मुँह से कहकर अपने आपको जनाते नहीं फिरते। शत्रु को रण में उपस्थित देखकर कायर ही प्रलाप (बकवाद) किया करते हैं।

तुम्ह तो काल हांक—

आप तो मानों काल को हाँक ले आये हैं,(अर्थात् साथ ही लेते आये हैं) जो बार-बार मेरे लिये बुलाते हैं। लक्ष्मण के कठोर वचन सुनकर परशुरामजी ने भीषण परशु को सँभाल कर हाथ में लिया।

अब जनि देइ—

वे बोले—अब लोग मुझे दोष न दें, कड़वी बात कहने वाला यह बालक मारने ही योग्य है। बालक समझ कर मैंने इसे बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरने वाला हो गया है।

कौसिक कहा—

विश्वामित्रजी ने कहा—अपराध क्षमा कीजिये, बालक के गुण-दोषों पर साधु जन ध्यान नहीं देते। परशुरामजी बोले,—हाथ में कुल्हाड़ा है और मैं अकारण क्रोधी (बिना कारण क्रोध करने वाला) हूँ तथा गुरु (शिवजी) का द्रोही अपराधी सामने खड़ा है।

उत्तर देत—

यह उत्तर देता जाता है, ऐसी दशा में भी जो मैं इसे बिना

मारे छोड़ता हूँ सो ह विश्वामित्र वह केवल आपके शील के कारण ही। नहीं तो इसे कठोर फरसे से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरु (शिवजी) से उऋण हो जाता।

गाधि-सूनु कह हृदय—अजगव=शिवजी का धनुप।

विश्वामित्रजी हृदय में हँसकर कहते हैं कि परशुराम को हरियाली ही सूझ रही है (सावन के अंधे को जैसे सब जगह हरियाली ही सूझती है वैसे ही इन्हें सब साधारण क्षत्रिय ही दिखाई देते हैं जिन्हें ये कई बार मार चुके हैं)। जिन्होने शिवजी के धनुप को ऊख की तरह तोड डाला, उन्हे ये नासमझ अब भी नहीं समझते हैं।

कहेउ लपन मुनि सील—

लक्ष्मणजी ने कहा—हे मुनि, आप के शील को कौन नहीं जानता ? वह तो ससार मे प्रसिद्ध है। माता और पिता से तो आप अच्छी तरह से उऋण हो चुके। गुरु का ऋण बाकी रहा है, उसकी आपके हृदय में बड़ी चिन्ता है।❀

❀एक दिन परशुरामजी की माता रेणुका यमुना स्नान करने गईं, वहाँ गधर्वों की विहार-लीला देखते देखते उसे लौटने में देर हो गई। जमदग्नि ने पर-पुरुष की रति देखना पाप समझ कर अपने पुत्रों को अपनी माता का सिर काटने की आज्ञा दी। यह सुन जब सात बेटों ने आज्ञा न मानी तब मुनि ने परशुरामजी से कहा उन्होंने पिता की आज्ञा से सातों भाइयों और माता का सिर काट दिया। ऐसा साहस देख, ऋषि प्रसन्न हो बोले कि वर मांग। उन्होंने कहा कि ये सब जी उठें और मेरे मारने का वृत्तान्त न जानें। तब उन्होंने सब को जिला दिया। उन्हीं जमदग्नि को जब सहस्रबाहु ने मारा तो उनकी माता ने २१ बार छाती पीटी। इस पर परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रिय-रहित किया। इस तरह माता-पिता ने तो वे उऋण हो गए थे पर गुरु (महादेवजी) से अभी उऋण नहीं हुए थे।

सो जनु हमरेहि—व्यवहरिया=साहूकार, कर्ज देने वाला ।

वह ऋण मानों हमारे ही मत्थे निकाला है । उस ऋण को चढे दिन भी बहुत बीत गये, इसलिए उसका ब्याज भी बहुत बढ गया होगा । अब साहूकार (महादेव, जिनका तुम पर ऋण है) को बुलाकर लाइये, तो मैं तुरन्त थैली खोलकर हिसाब चुका दूँ । इसमें से यह ध्वनि निकलती है कि तुम हम से बदला लेने के योग्य नहीं हो, अपने गुरु महादेवजी को बुलाओ, वे आकर बदला ले जायँगे ।

सुनि कटु वचन—

(परशुराम ने) कटु वचन सुनकर फरसे को सँभाला तो सब लोग हा ! हा ! करके चिल्ला उठे । (लक्ष्मणजी ने फिर कहा) हे भृगुश्रेष्ठ, मुझे आप फरसा दिखा रहे हैं, पर हे राज-द्रोही महाराज, मैं आपको ब्राह्मण विचार कर बचा रहा हूँ ।

मिले न कबहुँ सुभट—

कभी गहरे संग्राम में आपको अच्छे योद्धा नहीं मिले । ब्राह्मण देवता घर के ही बड़े होते हैं । इतने में सब लोग पुकार उठे कि यह अनुचित कह रहा है । तब रघुनाथजी ने संकेत से लक्ष्मणजी को मना किया ।

लखन उतर —

इस तरह लक्ष्मणजी की उत्तररूपी आहुति से परशुरामजी की क्रोध-रूपी अग्नि को बढते देख रघुकुल के सूर्य रामचन्द्रजी जल के समान (शान्ति करने वाले) वचन बोले,—

नाथ करहु—छोहू=दया ।

हे नाथ, बालक पर दया कीजिये । यह तो सीधा दुधमुँहा बालक है, इस पर क्रोध न कीजिये । यदि वह श्रीमान् के प्रभाव को कुछ भी जानता, तो क्या यह नादान इतनी बराबरी करता ।

छल तजि करहि—

अरे शिवद्रोही, छल छोडकर संग्राम कर, नहीं तो भाई सहित तुझे मार डालूँगा। इस तरह परशुरामजी कुठार उठाये हुए बक रहे हैं और रामचन्द्रजी सिर नवाये हुए मन में मुस्कराते हैं कि—

गुनहु लषन कर—गुनहु=गुनाहु, अपराध।

अपराध तो लक्ष्मण का है और रोष हम पर करते हैं कहीं कहीं सीधेपन से भी बड़ा दोष होता है। दूज का चन्द्रमा टेढ़ा होता है अत उसको सब नमस्कार करते हैं और राहु भी उसको नहीं ग्रसता।

राम कहेउ—

रामचन्द्रजी ने कहा,—हे मुनीश्वर, क्रोध को त्याग दीजिये, आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आपके सामने है। जिस तरह से कोध दूर हो मुझे अपना सेवक समझ कर वही कीजिये।

प्रभु सेवकहिं—

स्वामी और सेवक में युद्ध कैसा ? हे विप्रवर, क्रोध को त्यागिये। आपका वेश (क्षत्रिय समान) देखकर यह कुछ कह बैठा है इसलिए बालक का भी दोष नहीं है।

देखि कुठार बान—

आपको कुठार और धनुषबाण धारण किये देख और वीर (योद्धा) समझकर लडके को क्रोध आ गया। आपका नाम तो इसने जाना, पर आपको पहिचान नहीं सका और वंश के स्वभावानुसार उसने उत्तर दिया है, क्षत्रियों में तेज स्वाभाविक ही है।

जौं तुम्ह अवतेहु—

हे गोसाईं, यदि आप मुनि की भाँति आते, तो बालक आप के चरणों की धूलि सिर पर धारण करता। बिना जानेकी भूलको क्षमा कीजिये, ब्राह्मण के हृदय में तो विशेष दया होनी चाहिये।

हमहिं तुम्हहिं सरबर—सरवर=बराबरी

हे नाथ, हमारी तुम्हारी बराबरी कैसी ? कहिये न, कहाँ चरन और कहाँ माथा ! हमारा छोटा-सा दो अक्षर का 'राम' नाम और आपका 'परशु' सहित बड़ा नाम (परशुराम) है।

देव एक गुन—

हे देव, हमारा तो धनुष ही एक गुण है, या हमारे धनुष में ही एक गुण (सूत, ज्या) है और आपके परम पवित्र नौ गुण हैं। ब्राह्मण में निम्नलिखित नौ गुण कहे हैं—शम दम, तप, शौच, शांति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता। आपसे हम सब प्रकार से हारे हुए हैं। हे ब्राह्मण, हमारे अपराध को क्षमा कीजिये।

बारबार मुनि विप्रवर—

रामचन्द्रजीने परशुरामजी से बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा—(वीर या सुभट कहकर सम्बोधन नहीं किया) तो परशुरामजी क्रुद्ध होकर बोले,—तू भी अपने भाई के समान टेढ़ा है।

निपटहि द्विजकरि—स्रुवा=लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी कड़छी जिससे हवन में घी की आहुति देते हैं। कृपानु=आग।

तू मुझको केवल ब्राह्मण ही जानता है, मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, सो तुझे सुनाता हूँ। धनुष मेरा स्रुवा है, बाण आहुति है और अति प्रचण्ड क्रोध अग्नि है।

समिध सेन—

चतुरङ्गिनी सेना (वह सेना जिसमें रथ, घोड़े, हाथी और पैदल हों) होम की सुन्दर लकडी हैं, बड़े-बड़े राजा आकर बलिपशु हुए हैं। मैंने इसी फरसे से काटकर काटकर उनका बलिदान किया है, ससार में मैंने ऐसे करोडों समर-यज्ञ किये हैं।

मोर प्रभाव विदित—

मेरा प्रभाव तुझको विदित नहीं है, इसी से तू ब्राह्मण के धोखे से मेरा निरादर करके बोलता है। धनुष तोडकर तेरा बड़ा घमण्ड बढ़ गया है, ऐसा अहकार मालूम होता है मानों जगत् को जीतकर खड़ा है।

राम कहा मुनि कहहु—पिनाक = शिव का धनुष।

रामचन्द्रजी ने कहा—हे मुनि, जरा विचारकर बोलिये, हमारी भूल तो छोटी ही है पर आपका क्रोध बहुत बढ गया है पुराना धनुष छूते ही टूट गया, फिर भला मैं किसलिए अभिमान करूँ।

जो हम निदरहिं—

हे भृगुनाथ, सच सच सुनिए, यदि हम ब्राह्मण कहकर आपका निरादर करते हैं, तो ससार में ऐसा शूरवीर कौन है, जिसके डरसे हम मस्तक नवावें।

देव दनुज भूपति—प्रचारइ = ललकारे।

देव, दानव, राजा और अनेक योद्धा, चाहे वे हमारे समान बल वाले हों और चाहे अधिक बलवाले हो, यदि युद्ध के लिए हमें कोई ललकारे, तो चाहे काल ही क्यों न हो हम प्रसन्नता से उस से लडेंगे।

छत्रिय तनु धरि समर—सकाना = डरना।

क्षत्रियका शरीर धारण करके जो युद्ध से डरे उसको कुलका कलङ्क और अधम जानना चाहिये। मैं कुलकी प्रशंसा नहीं करता स्वभावकी बात कहता हूँ कि रघुवंशी संग्राम में काल से भी नहीं डरते।

विप्र वंश के— पटल=पड़ना।

ब्राह्मण-वंश की ऐसी महिमा है कि जो आप से डरता है, वह निर्भय हो जाता है—अथवा अपनी छातीपर भृगुकी लात का चिह्न दिखाकर कहते हैं कि विप्रवंशकी यह महिमा है कि जिसके कारण हम अभय होकर भी आप से डरते हैं। रामचन्द्रजी के अत्यन्त अभिप्राय-पूर्ण वचन सुनकर परशुरामजीकी बुद्धिके पडदे खुल गये।

राम रमापति—रमापति=विष्णु।

परशुरामजीने कहा,—हे रामचन्द्र, यह लक्ष्मीपति विष्णु का धनुष लीजिये और इसको खींचिये, जिससे मेरा सन्देह मिट जाय। (क्योंकि यह धनुष मुझे विष्णु ने दिया था और कह दिया था कि जो इसको चढ़ावे उसे तुम मेरा पूर्ण- अवतार जानना) ऐसा कह कर धनुष देने लगे, तो वह आप ही चढ़ गया, यह देख कर परशुरामजी के मनमें विस्मय हुआ कि मुझसे बड़ी भूल हुई।

जाना रामप्रभाव—

जब रामचन्द्रजी के प्रभावको जान लिया, तब शरीर प्रेमसे पुलकित और प्रफुल्लित होगया। हृदयमें प्रेम नहीं समाता, वे हाथ जोडकर बोले—

जय रघुवंश—वनज=वन (जल) में होनेवाला अर्थात् कमल।

हे रघुवंश-रूपी कमल वन के सूर्य और भयङ्कर राक्षस-वंश-रूपी जङ्गल के जलानेवाले दावानल, आपकी जय हो! देवता, ब्राह्मण और गौके हितकारी आपकी जय हो! मद, मोह, अज्ञान, क्रोध और भ्रमके हरने वाले, आपकी जय हो।

विनयशील करुणा—नागर=चतुर। अनग=कामदेव।

नम्रता, शील, दया और गुणोंके समुद्र, वचनोंकी रचनामें अति चतुर, सेवकों को सुख देनेवाले, सुन्दर अङ्गों वाले तथा करोडों कामदेवोंकी छविसे युक्त शरीरवाले, आपकी जय हो।

करउँ काह मुख—मानस=मानसरोवर।

एक मुख से आपकी मैं क्या प्रशंसा करूं? शिवजी के मनरूपी मानसरोवर के हंस आपकी जय हो! मैंने अनजान में बहुत अनुचित बातें कहीं, आप दोनो भाई क्षमा के मंदिर हैं, क्षमा कीजिये।

कहि जय जय —अपभय=भयरहित।

रघुकुल के लिए पताका-रूप रामचन्द्रजीका वारम्बार जयजयकार करते हुए परशुरामजी तपस्या के लिए वन को चले गये। जो राजा पहले डर गये थे वे अब निडर हो गये और जो कायर (डरपोक) थे वे जहाँ-तहाँ पहले ही भाग खडे हुए थे।

देवन—दुंदुभी =नगाडा।

देवतागण नगाडे बजाकर प्रभु रामचन्द्र पर फूल बरसाने लगे। नगर के स्त्री पुरुष प्रसन्न होगये और अज्ञानमय संताप मिटगया।

मन्थरा-कैकेयी-सम्वाद

बाजहिं बाजन विविध—विधाना=तरह से

नानाप्रकार के बाजे बज रहे हैं, नगर के उस आनन्द का वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग भरतजी का आना मना रहे हैं कि वे भी जल्दी आ जाँय, तो नेत्रों को सफल कर लें।

हाट बाट घर—अथाई=बैठक या चौबारा

बाज़ारों में, रास्तों में, घरो में गलियो और बैठको में सब जगह स्त्री-पुरुषों में आपस में यही चर्चा है कि कल शुभ लगन किस समय है, जब विधाता हमारी अभिलाषा (इच्छा) पूर्ण करेंगे?

कनकसिंहासन—

सुवर्ण के सिंहासन पर सीता-सहित अब रामचन्द्र जी

बैठ जायँ, तब चित्त को आनन्द हो। सम्पूर्ण अयोध्यावासी कहते हैं कि कल कब होगा? परन्तु खोटी चाल वाले देवता विघ्न मनाने लगे।

तिन्हहि सुहाई—

जैसे चोर को चाँदनी रात नहीं सुहाती, वैसे ही उन्हें अयोध्या में बधाइयाँ होना नहीं सुहाता। सरस्वतीजी को बुलाकर बार-बार उनके पाँवों में पड कर वे विनती करने लगे।

बिपति हमारी—सुरकाज=देवताओं का काम

हे माता, हमारी भारी विपत्ति को देखकर आज वही करिये कि जिससे रामचन्द्रजी राज्य को छोड वन को जायँ, और देवताओं के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हों।

सुनि सुरबिनय—सरोजबिपिन=कमल का वन। खोरी=दोष।

देवताओं की विनती सुनकर सरस्वती खडे खडे पछताती हैं कि मैं (अयोध्यारूपी) कमलवन के लिए पाले की रात्रि होऊँगी, सरस्वती के पछतावे को देखकर फिर देवता एहसान रखते हुए बोले—कि हे माता, आपको कुछ भी दोष नहीं लगेगा।

बिसमय हरष—

आप सब तरह से रामचन्द्रजी के प्रभाव को जानती हैं। वे तो विस्मय और हर्ष से (सुख-दुःख से) रहित हैं। जीव कर्म के अधीन होकर ही सुख-दुःख भोगता है (रामचन्द्रजी तो जीव नहीं हैं) इसलिए देवताओं के कल्याण के लिए आप अयोध्या जाइये।

बार बार गहि चरन—बिबुध=देवता। पोची=खोटी, तुच्छ, नीच। बिभूति=विभूति, ऐश्वर्य।

जब देवताओं ने बार-बार पाँव पकड कर उन्हें संकोच में डाला, तब वे यह विचार कर चलीं कि देवताओं की बुद्धि खोटी

है। इनका निवास तो ऊँचा (स्वर्ग में) है, परन्तु इनके कर्म नीच हैं, ये दूसरे के ऐश्वर्य को नहीं देख सकते।

आगिल काज—

फिर आगे के काम को विचार कर (कि गौ ब्राह्मण, देवता और पृथ्वी का भार दूर होगा) तथा चतुर कवि मेरा आदर करेंगे यह सोचकर प्रसन्न मन से सरस्वती दशरथजी के पुर में आई, परन्तु ऐसी मालूम होती थी, मानो असह्य दुख देने वाली ग्रहदशा हो।

नामु मंथरा—

कैकेयी की मन्दबुद्धि वाली एक दासी थी जिसका नाम मंथरा था। उसको अपयश की पिटारी बना कर (उसके माथे सारा दोष मढ कर) सरस्वती उसकी बुद्धि को उलट गई।

दीख मंथरा—

मंथरा ने देखा कि नगर को सजाया जा रहा है, सुन्दर मांगलिक बाजे बज रहे हैं। उसने लोगों से पूछा कि आज कौन सा उत्सव है ? रामचन्द्रजी का राजतिलक सुनकर उसके हृदय में जलन उत्पन्न हुई।

करइ विचार कुबुद्धि कुजाती—गँव=सुयोग, अवसर।

वह नीच बुद्धिवाली खोटी जाति की दासी विचार करने लगी कि रात ही भर में कैसे काम बिगड सकता है ? जैसे दुष्ट भीलनी शहद के छत्ते को लगा हुआ देखकर, सुयोग देखती है कि मैं उस पर कब और कैसे हाथ साफ करूँ, ऐसे ही मंथरा भी (अवसर) देखने लगी (मौका ताकने लगी)

भरतमातु पँह गई—

वह बिलखती हुई भरतजी की माता कैकेयी के पास गई। रानी ने हँस कर कहा;—तू उदास क्यों हो रही है ? मंथरा

नहीं देती है, लम्बी-लम्बी साँसे लेकर तिरिया-चरित्र करके (स्त्रियों के स्वभाव के अनुसार) आँसू बहाती है।

हँसि कह रानि—

रानी ने हँस कर कहा,—तेरे गाल बड़े-बड़े हैं (तू बड़ी बकवादिनी है) मैं समझती हूँ कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है। तब भी वह महापापिनी दासी बोली नहीं और इस प्रकार साँस छोड़ने लगी मानो काली नागिन है।

सभय रानि कह—

तब रानी ने डर कर कहा,—अरी कहती क्यों नहीं, रामचन्द्र राजा दशरथ लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तो कुशलपूर्वक हैं? यह सुनकर कुबरी मथरा के मन में बड़ा दुःख हुआ।

कत सिख देइ—जनेसु=राजा।

हे महारानी, हमें कोई क्या सीख देगा और हम किसका बल पाकर मुँहजोरी करेंगी। राम को छोड़ आज किसकी कुशल है, जिसे राजा युवराजपद दे रहे हैं।

भयउ कौसिलहिं—

कौशल्या को विधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुआ है जिस को देखकर उसके हृदय में घमण्ड नहीं समाता। जाकर सब शोभा को क्यों नहीं देखती हो, जिसे देखकर मेरे मन में दुःख हुआ है।

पूतु बिदेस न सोच—

(तुम्हारा) पुत्र परदेश में है, तुमको कुछ भी फ़िक्र नहीं, तुम जानती हो कि पति हमारे वश में हैं। तोशक-तकिये से सजी सेज और नींद तुम्हें बहुत प्यारी लगती है, राजा के कपट और चतुराई को तुम देखती ही नहीं।

सुनि प्रियबचन मलिन—अरगानी=अलग रह, चुप रह।

मथरा के प्यारे वचन सुन और उसे खोटी जानकर ... ने

झुककर कहा,—बस चुप रह। जो फिर कभी ऐसी घर में फूट करानेवाली बात कहेगी, तो पकड़ कर जीभ खिंचवा लूँगी।

काने खोरे कूबरे—

काने, लंगड़े और कुबड़े बड़े कुटिल होते हैं। (इनमें भी) स्त्री और भी खोटी होती है, फिर दासी सब से अधिक। यह कह कर भरत जी की माता मुस्करायीं।

प्रियवादिनि सिख दीन्हेउँ—

कैकेयी ने कहा,—हे प्रिय बोलनेवाली, मैंने तुझे यह शिक्षा दी है, वैसे तुझपर मुझे स्वप्न मे भी क्रोध नहीं है। सुन्दर मंगलकारी दिन वही होगा जिस दिन तेरा कहना सत्य हो (अर्थात् रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हो)।

जेठ स्वामि सेवक—दिनकरकुल=सूर्यवंश।

बड़ा भाई राजा और छोटे भाई सेवक होते हैं, सूर्यकुल की यही सुन्दर रीति है। यदि सचमुच कल रामचद्रजी का राजतिलक है, तो सखी, तेरे मन में जो आवे, माँग, मैं दूँगी।

कौशल्या-सम सब—

सब माताएँ रामचचद्रजी को कौशल्या के समान सहज स्वभाव से ही प्यारी हैं। परतु मुझपर उनका अधिक स्नेह है, मैंने प्रीति की परीक्षा करके देखी है।

जो विधि जनम देइ—छोहू=कृपा। छोभ=क्षोभ, दु:ख।

यदि ब्रह्मा कृपा कर मुझे फिर जन्म दे, तो रामचन्द्र मेरे पुत्र और सीता बहू हों। रामचन्द्र तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं, उनके तिलक से तुझे दु:ख क्यों हुआ?

भरत सपथ तोहि—परिहरि=छोड़दे।

तुझे भरतकी शपथ है, छल और छिपावको त्याग दे और

सच कह कि आनन्द के समय जो तू दुःख करती है, इसका कारण क्या है ?

एकहि बार आस—रउरेहि—श्रीमती जी का, आपको।

मथरा बोली—एक ही बारमे सब आशाएँ पूरी होगई, क्या अब दूसरी जीभ लगाकर कुछ कहूँगी। यह मेरा अभागा कपाल फोडने ही योग्य है जो अच्छा कहने में भी आपको दुःख मालूम हुआ।

कहहि झूठ फुरि—

हे माता, जो झूठ-मूठ बातें बनाकर कहते हैं व ही तुम्हे प्रिय हैं, और मैं तो कड़वी हूँ। मैं भी अब ठकुर-सोहती (खुशामद की बात) कहा करूँगी, नहीं तो दिनरात चुप रहूँगी।

करि कुरूप विधि—

विधाता ने मुझे कुरूप बनाकर परवरश किया है, जो बोया है, वह काटना होगा और जो दिया है, वह मिलेगा। कोई राजा हो हमारी क्या हानि है ? अब मैं दासी छोडकर रानी तो हूँगी ही नहीं।

जारइ जोग सुभाव—

हमारा स्वभाव जलाने योग्य है, कि तुम्हारा बुरा नहीं देखा जाता। हे देवी, इसीसे कुछ उचित बातें कही हैं, सो मुझसे भारी भूल होगई, उसे क्षमा करो।

गूढ़ कपट प्रियवचन—तीय—स्त्री। अधर—ओंठ। पतियाना= विशवास करना।

स्त्रियों की बुद्धि ओठो मे होती है—अर्थात थोडा बहुत सुनते ही वे बदल जाती है, इससे रानी कैकेयी ने गहरे कपट से भरे प्रिय वचन सुनकर देवताओ की माया के वश होकर वैरिन मन्थरा को सहेली (अपना भला चाहने वाली) समझ कर उसपर विश्वास कर लिया।

सादर पुनि पुनि—रहसी—प्रसन्न हुई। चेरी—दासी।

(कैकेयी) आदर सहित बार-बार उससे पूछती है, ऐसा मालूम होता है, मानो शबरी (भीलनी) के गान पर मृगी मोहितहो गई हो। जैसा होनहार था, वैसी ही बुद्धि बदल गई। यह देखकर दासी प्रसन्न हुई कि उसका घात लग गया, दाँव चल गया।

तुम्ह पूँछहु मैं—

आप पूछती हैं, परन्तु मैं कहती हुई डरती हूँ, क्योंकि आपने मेरा नाम घरफोडी रखा है। इस प्रकार बहुत तरह से चिकनी-चुपडी बातें बनाकर जब उसने अपना विश्वास जमा लिया, तब वह आगे इस प्रकार के वचन बोली कि मानो उनसे अवध्या पर साढसाती (साढे सात वर्ष की शनिकी दशा) आ गई है।

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह—

हे रानी, तुमने राम और सीता को अपना प्रिय बताया है और कहा है कि तुम भी उनके प्रिय हो, सो बात ठीक है। परन्तु यह बात पहले थी, अब वे दिन बीत गये। समय फिरने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल—सवति—सौत। बारी—जल, घेरा।

सूर्य कमलों को पालने वाले हैं, पर बिना जल के वे ही उनको जलाकर भस्म कर देते हैं। तुम्हारी जड को सौत (कौशल्या) उखाडना चाहती है, इसलिए आप घेरा बनाकर उपायरूपी श्रेष्ठ जल से उसको रोको।

तुम्हहिं न सोच—

तुम्हें अपने सोहाग के घमण्ड में कुछ सोच नहीं है; तुम राजा को अपने वश में समझती हो। पर राजा मनके मैले हैं और मुँह से मीठी बातें करते हैं और तुम्हारा तो सीधा स्वभाव है।

चतुर गभीर—बीचु=मौका। मत सलाह। रउरे=तुम, आप।

रामचन्द्र की माता चतुर और गभीर है। उसने मौका पाकर अपनी घात बना ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेजा,

तुम इसको राम की माता की सलाह समझो।

सेवहि सकल सवति—सवति=सौतें।

वे समझती हैं कि सभी सौत मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं, परन्तु भरत की माता पति के बल से घमण्ड में चूर रहती है। हे माई, कौशल्या को बस तुम्हारा ही खटका है, चतुर मनुष्य का कपट ज़ाहिर नहीं होता, समझ में नहीं आता।

राजहि तुम्ह पर प्रीति—

राजा का तुम पर अधिक प्रेम है, सौत इसको स्वभाव से ही नहीं देख सकती। उसने जाल रचकर राजा को अपने वश में कर के रामचन्द्र के राजतिलक के लिए लग्न निश्चित करवा लिया है।

यह कुल उचित राम—सुहाई=अच्छा लगता है।

इस कुल की प्रथा के अनुसार रामचन्द्र को तिलक होना उचित है और यह बात सभी को अच्छी लगती है तथा मुझे और भी अच्छी लगती है। परन्तु आगे की बात सोचकर डरती हूँ—फिर ईश्वर जो फल देगा, वह भोगना ही पडेगा।

रचि पचि—

इस तरह मन्थरा ने करोडों तरह की कपटपूर्ण बातें कह कर कैकेयी को खूब पट्टी पढाई। सौतों की सैकडों ऐसी बातें कहीं जिनसे विरोध और भी बढे।

भावीवस प्रतीति—प्रतीति=विश्वास।

होनहार के वश में होने से कैकेयी को विश्वास हो गया, फिर रानी सौगन्ध देकर पूछने लगी। मन्थरा ने कहा,—क्या पूछती हो, तुमने अब भी नहीं समझा! अपने हित और अनहित (भले-बुरे) को तो पशु भी जान लेते हैं।

भयउ पाखु दिन सजत—

तैयारियाँ होते हुए पन्द्रह दिन हो गये और तुमको आज ही मुझसे खबर मिली है। मैं तुम्हारे राज्य में खाती-पहनती हूँ, इस लिए सत्य कहने में मुझे दोष ही क्या है?

जौं असत्य कछु कहब—

यदि मैं कुछ बात बना कर झूठ कहूँगी, तो विधाता मुझे दण्ड देंगे। यदि कल रामचन्द्र को राज-तिलक होगया, तो समझ लेना कि तुम्हारे लिये ब्रह्मा ने विपत्ति के बीज बो दिये।

रेख खँचाइ कहौं—कामिनी=स्त्री।

हे रानी, मैं रेखा खींच कर अर्थात् प्रतिज्ञा करके बलपूर्वक कहती हूँ कि तुम दूध की मक्खी हो गई हो (मक्खी जब दूध में गिर जाती है तो न वह खा पी सकती है न उड़ ही सकती है) यदि पुत्र सहित सेवा करोगी, तो घर मे रहोगी, और दूसरा उपाय नहीं है, अर्थात् राम और कौशल्या की चाकरी किये बिना तुम्हें घर में रहना कठिन हो जायगा।

कद्रू बिनतहिं दीन्ह—नेब=नायब, सहकारी।

जैसे कद्रू ने* विनता को दुख दिया था, उसी तरह से कौशल्या तुम्हें देगी। भरत बंदी गृह का सेवन करेंगे, और लक्ष्मण रामचन्द्र के नायब होंगे।

कैकयी मथरा की कठोर वाणी सुन सहम कर सूख गई और कुछ कह न सकी। उसका शरीर पसीने से भीग गया, वह कले की तरह काँप उठी, तब कुबड़ी मथरा ने दाँतों तले जीभ दबा ली।

---

*कद्रू और विनता कश्यप मुनि की दो पत्नियां थीं। कद्रू से सर्प और विनता से गरुड़ उत्पन्न हुए। एक बार कद्रू ने विनता से पूछा—सूर्य के घोड़ों की पूँछ का रंग कैसा है? विनता ने कहा,—

कैकयसुता सुनत—कदली=केला। दसन=दाँत।

कहि कहि कोटिक—उकठ=सूखा ।

फिर करोडो कपट की कहानियाँ सुनाकर रानी को समझाने लगी कि धीरज धरिये, घबडाइये मत । बुरा पाठ पढ़ाकर उसने कैकेयी को कठोर (पक्का) कर दिया । जैसे सूखा काठ नमता नहीं इसी तरह कैकेयी भी कठोर हो गई ।

फिरा करमु प्रिय लागि—मराली=हंसनी ।

भाग्य पलट गया, कुचाली (मथरा) अच्छी लगने लगी, बगुली को हंसिनी समझकर कैकयी उसकी प्रशंसा करने लगी । हे मथरा सुन, तेरी बात सच्ची है , मेरी दाहिनी आँख नित फड़कती है । (स्त्री की दाहिनी आंख फड़कना बुरा माना जाता है) ।

दिनप्रति देखौं राति—

प्रतिदिन रातमे कुस्वप्न देखती हूँ । परन्तु अपनी अज्ञानतासे मोहवश तुमसे मैंने कुछ नहीं कहा । हे सखी, क्या करूँ, मेरा सीधा स्वभाव है, दाहिना-बायाँ (भला-बुरा) कुछ नहीं जानती । (कैकेई के दु स्वप्न आँख फडकना आदि भविष्य मे विधवा होने और अपयश पाने के सूचक थे पर -स समय उसे उनका मतलब दूसरा ही जान पडा ।

अपने चलत न आजु—अघ=पाप

मैंने अपनी चलती में आजतक किसी का बुरा नहीं किया । फिर पता नहीं किस पापके कारण विधाता ने एक साथ ही मुझे यह दुस्सह दु ख दिया ?

सफेद है, किन्तु कद्रू ने काले रग का बताया । दोनों में विवाद बढा और यह बाजी लगी कि जिस की बात झूठी हो, वह जन्मभर दूसरी की दासी बनकर रहे । कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों को समझाकर भेज दिया और वे घोड़ों की पूँछ में जा लिपटे । पूँछ काले रग की दीखने लगी । विनता को दासी हो कर रहना पड़ा ।

भयउ पाखु दिन सजत—

तैयारियाँ होते हुए पन्द्रह दिन हो गये और तुमको आज ही मुझसे खबर मिली है। मैं तुम्हारे राज्य में खाती-पहनती हूँ, इस लिए सत्य कहने में मुझे दोष ही क्या है?

जौं असत्य कछु कहब—

यदि मैं कुछ बात बना कर झूठ कहूँगी, तो विधाता मुझे दण्ड देंगे। यदि कल रामचन्द्र को राज-तिलक होगया, तो समझ लेना कि तुम्हारे लिये ब्रह्मा ने विपत्ति के बीज बो दिये।

रेख खँचाइ कहौं—कामिनी=स्त्री।

हे रानी, मैं रेखा खींच कर अर्थात् प्रतिज्ञा करके बलपूर्वक कहती हूँ कि तुम दूध की मक्खी हो गई हो (मक्खी जब दूध में गिर जाती है तो न वह खा पी सकती है न उड़ ही सकती है), यदि पुत्र सहित सेवा करोगी, तो घर मे रहोगी, और दूसरा उपाय नहीं है, अर्थात् राम और कौशल्या की चाकरी किये बिना तुम्हें घर में रहना कठिन हो जायगा।

कद्रू विनतहिं दीन्ह—नेब=नायब, सहकारी।

जैसे कद्रू ने* विनता को दुःख दिया था, उसी तरह से कौशल्या तुम्हें देगी। भरत वंदी गृह का सेवन करेंगे, और लक्ष्मण रामचन्द्र के नायब होंगे।

कैकयी मथरा की कठोर वाणी सुन सहम कर सूख गई और कुछ कह न सकी। उसका शरीर पसीने से भीग गया, वह केले की तरह काँप उठी, तब कुबड़ी मथरा ने दाँतों तले जीभ दबा ली।

---

* कद्रू और विनता कश्यप मुनि की दो पत्नियाँ थीं। कद्रू से सर्प और विनता से गरुड़ उत्पन्न हुए। एक बार कद्रू ने विनता से पूछा—सूर्य के घोड़ों की पूँछ का रंग कैसा है? विनता ने कहा,—

कैकयसुता सुनत—कदली=केला। दसन=दाँत।

कहि कहि कोटिक—उकठ=सूखा ।

फिर करोडो कपट की कहानियाँ सुनाकर रानी को समझाने लगी कि धीरज धरिये, घबड़ाइये मत। बुरा पाठ पढाकर उसने कैकेयी को कठोर (पक्का) कर दिया। जैसे सूखा काठ नमता नहीं इसी तरह कैकेयी भी कठोर हो गई ।

फिरा करमु प्रिय लागि—मराली=हसनी ।

भाग्य पलट गया, कुचाली (मथरा) अच्छी लगने लगी, बगुली को हसिनी समझकर कैकयी उसकी प्रशसा करने लगी। हे मथरा सुन, तेरी बात सच्ची है, मेरी दाहिनी आंख नित फडकती है। (स्त्री की दाहिनी आंख फडकना बुरा माना जाता है)।

दिनप्रति देखा राति—

प्रतिदिन रातमे कुस्वप्न देखती हूँ। परन्तु अपनी अज्ञानतासे मोहवश तुमसे मैंने कुछ नहीं कहा। हे सखी, क्या करूँ, मरा सीधा स्वभाव है, दाहिना-बायाँ (भला-बुरा) कुछ नहीं जानती। (कैकेइ के दुःस्वप्न आंख फडकना आदि भविष्य मे विधवा होने और अपयश पाने के सूचक थे पर इस समय उसे उनका मतलब दूसरा ही जान पडा।

अपने चलत न आजु—अघ=पाप

मैंने अपनी चलती में आजतक किसी का बुरा नहीं किया। फिर पता नहीं किस पापके कारण विधाता न एक साथ ही मुझे यह दुस्सह दुःख दिया ?

सफेद है, किन्तु कद्रू ने काले रग का बताया। दोनों में विवाद बढ़ा और यह बाजी लगी कि जिस की बात झूठी हो, वह जन्मभर दूसरी की दासी बनकर रहे। कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों को समझाकर भेज दिया और वे घोड़ों की पूँछ में जा लिपटे। पूँछ काले रग की दीखने लगी। विनता को दासी होकर रहना पड़ा।

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय—

रानीने कुबड़ी को प्राण के समान प्रिय समझा और बार-बार उसकी बुद्धि की बड़ी सराहना की कि तेरे समान संसार में मेरा हितकारी कोई नहीं है। मैं (शोकसागर में) बही जाती थी, उसकी तुम सहारा हुई हो।

जो बिधि पुरब—चषपूतरि=आँखों की पुतली।

हे सखी, कल यदि विधाता मेरा मनोरथ पूरा करेंगे, तो तुझे आँखोंकी पुतली बनाऊँगी। इसतरह दासी का बहुत तरह से आदर करके कैकयी कोपभवन में गई।

दशरथ कैकयी संवाद

बार बार कह—

राजा बार बार कहते हैं—हे सुमुखि हे सुलोचनि, (सुन्दर आँखवाली) हे पिकवचनि (कोयल सी आवाज वाली) हे, गजगामिनि (हाथी की सी चाल वाली) अपने क्रोध का कारण तो मुझे सुनाओ ?

अनहित तोर पिया—

हे प्रिये, तेरा अनहित (बुरा) किसने किया, किसके दो सिर हैं, किसको यमराज लेना चाहते हैं, अर्थात् कौन मरना चाहता है। कह तो सही, किस दरिद्रको राजाबना दूँ अथवा किस राजा को देशसे निकाल दूँ ?

सकौं तोर अरि—वरोरु=सुंदर जाँघवाली। आनन=मुँह। अमर=देवता।

यदि तुम्हारा शत्रु देवता हो तो उसे भी मार सकता हूँ, फिर बिचारे कीडे के समान स्त्री-पुरुष क्या चीज हैं ? हे सुन्दर जाँघवाली, तू मेरे स्वभाव को जानती है कि मेरा मन तेरे मुखरूपी चन्द्रमा का चकोर है।

प्रिय प्रान सुत सर्वस—

हे प्रिये, मेरे प्राण, पुत्र, सर्वस्व, कुटुम्बी और प्रजा जो कुछ है सब तेरे वश में है। हे रानी, यदि मैं इसमें कुछ कपट करके कहता हूँ, तो मुझे सौ बार रामचन्द्र की शपथ है।

विहसि मागु मनभावति—

जो मनमें भावे, उसको हसकर माँग लो और मनोहर शरीर पर गहने पहन लो। हे प्यारी, समय कुसमय को मनमें समझ कर देखो, और बुरे वेषको जल्दी त्याग दो।

यह सुनि मन गुनि—

मन्दबुद्धि कैकेयी यह सुनकर तथा राजाकी शपथके महत्व को मनमें विचारकर हसकर उठी और शरीर को आभूषणों से इस तरह सजाने लगी मानो भीलनी हिरनी को देखकर फन्दा डालती हो।

पुनि कह राउ सुहृद—

फिर राजाने मनमें प्रिय (प्रसन्न हुई) जान, स्नेहसे पुलकित होकर कोमल और मीठी वाणी में कहा—हे भामिनी! तेरी मन-भायी बात हो रही है, नगरमें घर-घर आनन्द बधाई हो रही है।

रामहिं देउँ कालि—बरतोर=बालतोड फोडा, जिसे छूते ही बड़ी दर्द होती है।

हे सुन्दर नेत्रों वाली, कल रामचन्द्रको युवराजपद दूँगा, इसलिए तुमभी आनन्द के साज सजाओ। राजाकी बात सुनकर उसका कठोर हृदय दहल उठा, मानों कोई पका हुआ बालतोड फोडा छू गया हो।

ऐसेउ पीर बिहँसि—गोई=छिपाया।

ऐसी भयङ्कर पीडा को भी उसने हसकर इस तरह छिपा लिया, जैसे चोरकी स्त्री सबके सामने नहीं रोती। राजा ने इस छल-चातुरीको न समझा। (क्योंकि) उसे करोड़ों कुटिलोंकी

शिरोमणि गुरु मन्थराने पढाया था।

जद्यपि नीतिनिपुन—

यद्यपि राजा दशरथ नीतिमें निपुण हैं, तथापि स्त्री-चरित्र रूपी समुद्र बडा अथाह है। फिर कैकेयी कपट-स्नेह बढाकर आँख और मुँह राजा की ओर मोडकर हस कर बोली,—

माँगु माँगु तुम—अवगाह=अगाध, अथाह बहुत गहरा।

हे प्रिय, आप माँग-माँग तो कहते हैं, पर कभी कुछ न देते हैं न लेते हैं। पहले दो वरदान देने के लिए आपने कहा था, पर मुझे तो उन्हींके मिलनमें भी सन्देह है।

जानेउ मरम राउ—निमरि=विसरना, भूलना।

राजाने हँसकर कहा,—मैं तुम्हारी अप्रसन्नताका मर्म समझ गया। तुमको रुष्ट होना परम प्रिय है। तूने धरोहर रखकर कभी माँगा नहीं, मेरा तो भूलनेका स्वभाव है, अत' भूल गया।

झूठेहु हमहिं दोष जनि—कोहाव=क्रुद्ध होना।

इसलिए मुझे झूठा दोष न दो, (वर) दो की जगह चार क्यों नहीं माँग लेती हो। रघुवंशियोंकी सदासे रीति चली आई है, कि प्राण भले ही चले जायँ पर बात नहीं जाती।

नहिं असत्य सम—गुञ्जा=रत्तियाँ। पातकपुंजा=पाप का समूह।

(एक) झूठके बराबर अनेक पापोंका समूह नहीं हैं, भला कहीं करोडो रत्तियाँ पहाडो के बराबर हो सकती हैं? सब अच्छे कार्मोंका आधार सत्य ही है यह वेद पुराणों में विदित है और मुनियो ने भी यही कहा है।

तेहि पर राममपथ—कुबिहग=बुरा पक्षी। कुलह=शिकारी पक्षियों की आँखें ढकने की टोपी। सुकृत=पुण्य। अवधि=सीमा।

इसपर मैं रामचन्द्र की सौगन्ध खा चुका हूँ, जो रामचन्द्र मेरे पुण्य और स्नेह की सीमा हैं। इस तरह बात को और भी पक्की करके दुष्ट बुद्धि वाली कैकेयी हँसकर ऐसी बोली,, मानों

दुर्बुद्धिरूपी दुष्ट पक्षी की आँख ढकने की टोपी खोल दी हो। (शिकारी पक्षियो को शिकार पर उडाने के समय उनकी टोपी खोल दी जाती है।)

भूप मनोरथ सुभग—

राजा का मनोरथ ही सुन्दर वन है और उनका सुख ही मानों पक्षियो का झुण्ड है, उस पर कैकेयीरूपी भीलनी अपने वचनरूपी भयङ्कर बाण को छोडा चाहती है।

सुनहु प्राणप्रिय भावत जीका—

हे प्राणप्यारे, सुनिये, मेरे मनको भाता हुआ प्रथम वर तो यह दीजिये कि राजतिलक भरतको हो। हे नाथ, दूसरा वर हाथ जोडकर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिये।

तापसवेष विशेष—कोक=चकवा। शशिकर=चन्द्रमाकी किरणें।

तपस्वी का वेष धरकर तथा सासारिक विषयों से उदासीन रहकर रामचन्द्र चौदह वर्ष तक वन में निवास करे। स्त्री के कोमल वचनो को सुनकर राजा का हृदय ऐसा शोकान्वित हुआ, जैसे चन्द्रमा की किरणों के छू जाने से चकवा पक्षी विकल हो जाता है। (रात में चकवा चकई एक जगह नहीं रह सकते इसीलिए वह चन्द्रमा की किरणो को वियोग देने वाली समझ कर चिन्ता मे पड जाता है।)

गयउ सहमि नहिं कछु कहि—सचान=बटेर। लावा=बाज। विवरण=जिसका रंग उडगया हो। दामिनि=बिजली।

(कैकेयी की बातसुनकर) राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते नहीं बना। ऐसा मालूम होता था, मानो बटेरों के झुण्ड पर बाज झपटा हो। राजा का चेहरा बिलकुल फीका पड गया, मानों ताड के पेड पर बिजली गिर पडी हो।

माथे हाथ मूदि दोउ—करिनी=हथिनी। नेह=नीर।

राजा माथे पर हाथ रखकर दोनो आँखों को बन्दकर इस तरह सोच करने लगे मानों सोच ही शरीरधारण करके सोच रहा हो। हाय! मेरा मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फूला था, उसके फलते ही मानो (कैकेयीरूपी) हथिनी ने उसे जड़ से उखाड़ डाला। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ दिया और उसके लिये अचल विपत्ति की नींव रख दी।

कवने अवसर—

क्या समय था और क्या हो गया। स्त्री का विश्वास चला गया। (कैकेयी ने मेरा ऐसा नाश कर दिया!) जैसे योगी को योग-सिद्धि होने पर फल मिलने के समय अज्ञानता उसे नष्ट कर दे।

एहि विधि राउ मनहिं—माँखा=क्रुद्ध हुई। वेसहाना=मोल लेना, खरीदना।

इस प्रकार से राजा मन ही मन खीझ रहे थे, यह देख दुष्ट-बुद्धि कैकेयी हृदय में बुरी तरह क्रुद्ध हो बोली,—क्या भरत आप का पुत्र नहीं है? अथवा मुझे खरीद कर लाये हो?

जो सुनि सर अस लागु—

जो मेरी बात सुनते ही तुम्हें बाण सी लगी, (तो पहिले से) वचन सोच समझ कर क्यों नहीं बोले? या तो उत्तर दो या इन्कार कर दो। तुम रघुवंशियों में सत्य प्रतिज्ञा वाले हो।

देन कहेहु अब—

तुम्हीं ने वर देने को कहा था, चाहे अब मत दो और सत्य को त्याग कर संसार में अपकीर्त्ति लो। तुमने सत्य की सराहना करके वर देने को कहा था, तुमने सोचा होगा कि चबेना (तुच्छ सी वस्तु) माँग लेगी।

सिवि दधीचि बलि जो कहु—

राजा सिवि[1], दधीचि[2] और बलि[3] ने जो कुछ कहा, उन लोगों ने शरीर तथा धन त्याग दिया पर अपने वचन को निबाहा। कैकेयी अत्यन्त कडवी बातें कह रही है, मानों जले पर

---

१ शिवि बड़े धर्मात्मा राजा थे। एक बार वे यज्ञशाला में बैठे यज्ञ कर रहे थे। उनकी परीक्षा लेने के लिये इन्द्र बाज का और अग्नि कबूतर का रूप धर कर गये। कृत्रिम बाज कबूतर का पीछा करता हुआ यज्ञशाला में पहुँचा। वह कबूतर राजा की गोद में जा छिपा। बाज ने कहा—राजन् मेरा आहार मुझे दे दो। मैं मारे भूख के मरा जाता हू, मेरे मरने पर मेरे कुटुम्बी सब मर जायँगे तो तुम्हें उनकी हत्या लगेगी। राजा ने उत्तर दिया शरणागत होने से मैं इसे त्याग नहीं सकता। हाँ, इसके बदले और जो कुछ चाहो ले सकते हो। अन्त में उस कबूतर के बराबर राजा के शरीर का मांस देना निश्चित हुआ, तराजू में एक ओर कबूतर को रखकर दूसरी ओर राजा ने अपना मांस काट काट कर रखना शुरू किया पर वह कबूतर के बराबर नहीं हुआ। अन्त में राजा ने अपना मस्तक काटने की तैयारी की। तब इन्द्र और अग्नि दोनों ने प्रसन्न और प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया।

२ एक बार इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध हुआ इन्द्र किसी प्रकार भी वृत्रासुर को हरा न सका क्यों कि वृत्रासुर किसी शस्त्र से मरने वाला नहीं था। तब ब्रह्मा के कहने से इन्द्र ने दधीचि के पास जाकर उनकी हड्डी माँगी। उन्होंने प्रसन्नता से अपना शरीर गौ से चटवाकर हड्डी दे दी और प्राण त्याग दिया।

३ राजा बलि बड़े दानी थे। वे एक बार महायज्ञ कर रहे थे। इन्द्र की भलाई के लिए विष्णु भगवान् वामन रूप होकर गये और बलि से तीन पग पृथ्वी मांगी। गुरु के मना करने पर भी बलि ने ध्यान न

नमक छिटक रही हो।

धरमधुरंधर—कुठाम=बुरी जगह, मर्मस्थान।

धर्म-धुरधर राजा ने धैर्य धारण कर नेत्र खोले और सिर धुनकर लम्बी साँस ली। मन में कहा,—हाय! इसने बुरी जगह चोट मारी।

आगे देखि जरति—उघरी=नगी।

राजा ने सामने भारी क्रोध से जलती हुई कैकेयी को देखा, वह ऐसी मालूम होती थी, मानों क्रोधरूपी नगी तलवार हो। जिसकी मूठ कुबुद्धि है, निष्ठुरता धार है और कुबडी मन्थरा ने जिसे सान पर चढाया है।

लखी महीप कराल—

राजा ने उस भीषण और कठोर तलवार रूपी कैकेयी को देखकर सोचा कि क्या सचमुच ही यह मेरे जीवन को हर लेगी? राजा कडी छाती करके, उसको रुचने वाली विनीत वाणी बोले।

प्रिया वचन कस कहसि—हाँति=दूर करके, छोड के।

हे प्रिये, हे भीरु (व्यर्थ शका करने वाली) तू मेरे विश्वास और प्रीति को दूर करके ऐसी बुरी तरह की बातें क्यो कहती है? मैं शिव जी को साक्षी देकर कहता हूँ कि भरत और राम दोनो मेरी आँखे हैं।

अवसि दूत मैं पठउब—

मैं प्रात काल ही अवश्य दूत भेजूँगा और दोनो भाई सुनते

दिया और प्रसन्नता से सकल्प कर लिया। जब त्रिविक्रम रूप से भगवान् ने दो ही पग में तीनों लोक नाप लिये, तब तीसरे पग के लिए ने पीठ दे कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

ही तुरन्त चले आयेंगे। सुदिन अर्थात शुभ मुहूर्त्त देख तथा सब साज सजवाकर और डङ्का बजाकर भरत को राज-पद दूँगा।

लोभ न रामहिं राज—

राम का राज्य का लोभ नहीं है, उसकी भरत पर बड़ी प्रीति है। पर मैं बड़े-छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था।

राम सपथ सत कहउँ—छूछे=निष्फल, व्यर्थ।

मैं राम की शपथ लेकर स्वभाव से सच कहता हूँ कि उस की माताने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। हाँ, मैंने तुमसे विना पूछे यह सब कुछ किया, इसीलिये मेरे मनोरथ निष्फल हो गये।

रिस परिहरु अब मंगल—

अब क्रोध को छोड़कर मङ्गल साजसे सज्जित होओ। कुछ दिन बीतने पर भरत युवराज होंगे। मुझे एक ही बात का दुःख लगता है, कि दूसरा वर तुमने असमञ्जस मे डालनेवाला माँगा है।

अजहूँ हृदय दहत—

अब भी हृदय उसकी आँच स जल रहा है। क्या यह क्रोध है, हँसी है या वास्तवमें सत्य है ? क्रोध छोड़कर रामचन्द्र का अपराध कहो, सभी लोग कहते हैं कि रामचन्द्र सज्जन हैं।

तुहू सराहसि करसि—

तू भी रामचन्द्र का सराहती और उससे स्नेह करती है, पर अब मुझे तुम्हारी यह बात सुनकर सन्देह होगया है जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल हो भला वह माता के विरुद्ध काम कैसे कर सकता है ?

प्रिया हास—

हे प्रिये, हँसी और गुस्से को त्यागकर और सोच विचार कर समझदारी से माँगो, जिससे अब मैं आँख भर कर भरत का राज्याभिषेक देखूँ।

जिअइ मीन बर बारि—

मछली चाहे बिना जलके जीती रहे और साँप बिना मणि के दुखी दीन होकर चाहे जीता रह जाय पर मैं कपट-रहित मनसे अपना सहज स्वभाव कहता हूँ, कि मैं बिना रामचन्द्र के जीवित नहीं रह सकता।

समुझि देखु जिय—

हे प्यारी! तू स्वय चतुर है, मनमें विचार कर देख, मेरा जीवन रामचन्द्र के दर्शन के अधीन है। अर्थात् रामचन्द्र के बिना पल भर भी न जी सकूँगा। राजाकी मीठी वाणी सुनकर कुमति (कैकेयी) अत्यन्त जलती है, ऐसा मालूम होता है, मानों आग में घी की आहुति पड रही है।

कहइ करहु किन कोटि—

वह कहती है, करोडों उपाय क्यों न करो, यहाँ आपकी माया नहीं चलेगी। मेरा माँगा [वर] दो या 'नहीं' कह कर अपयश लो, मुझे अधिक प्रपञ्च अच्छा नहीं लगता।

राम साधु तुम साधु—

रामचन्द्र भी साधु हैं तुम भी चतुर और साधु हो, और रामचन्द्र की माता भी सीधीसादी हैं मैं सबको भली प्रकार पहचानती हूँ। कौशल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है, मैं भी उसे वैसा ही फल चखाऊँगी, उसे बहुत दिन याद रहेगा।

होत प्रात मुनि वेश धरि—

सवेरा होते ही मुनि-वेष धारण करके यदि रामचन्द्र वन को न जायँगे, तो हे राजन्, मनमें समझ लीजिये कि मेरा मरण और आपका अपयश निश्चित है।

अस कहि कुटिल—तरंगिनि=नदी।

इस प्रकार से कह कर कुटिल [कैकेयी] उठ खडी हुई, मानों क्रोधरूपी नदी में बाढ आई हो। वह नदी पापरूपी पहाड से पैदा, और ऐसे क्रोधरूपी जलसे भरी है कि देखी नहीं जाती।

दोउ बर कूल कठिन हठ—

दोनों वरदान इस नदी के दोनो किनारे हैं, कठोर हठ ही इसकी धारा है, कुवडी के उत्तेजक वचन भँवर हैं। राजा-रूपी वृक्ष को वह जड से उखाडती हुई, विपत्तिरूपी समुद्र की ओर बह चली।

लखी नरेस बात सब—

राजा ने देखा कि बात सब सची है, स्त्री के बहाने मेरे शिर पर मौत नाच रही है। राजा ने चरण पकड कर और विनती करके उसे बैठाया और कहा—सूर्यकुल रूपी वृक्ष के लिए कुठार न बन।

मागु माथ अबहिं—

तू मेरा मस्तक माग ले, तो अभी मैं तुझे दे दूँ, पर रामचन्द्र के वियोग से मुझे मत मार। जिस तरह से भी हो, रामचन्द्र को अयोध्या ही में रख, नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी, अर्थात् पछतावा रहेगा।

देखि ब्याधि असाधि नृप—

राजा ने जब देखा कि कैकेयी का हठरूपी रोग असाध्य है। तब वे अत्यन्त दीन वाणी से 'हा राम! हा राम!! हा रघुनाथ!!!' कहते हुए सिर पीटकर धरती पर गिर पडे।

ब्याकुल राउ सिथिल—पाठीन—एक तरह की मछली।

राजा व्याकुल हो गये, उनके सब अग ढीले पड गये, ऐसा मालूम होता था, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड कर फेंक दिया हो। उनका गला सूख गया मुँह से बात नहीं निकलती, ऐसे जान पडता है मानों बिना पानी के मछली तडपती हो।

पुनि कह कटु कठोर—माहुर—विप।

कैकयी फिर कडुवे और कठोर वचन बोलने लगी, मानों घाव में विष लगाती हो। [वह कहने लगी] यदि अन्त में ऐसा ही करना था, तो 'माँग-माँग' किस विरतपर कहते थे?

दुइ कि होइ इक समय—

हे राजन्, खिलखिलाकर हँसना और गालों को फुलाना क्या दोनों बातें एक साथ हो सकती हैं ? इसी प्रकार दानी कहला कर कृपणता करते हो शूरवीरता और कुशल-क्षेम तथा ठकुराई क्या एक साथ हो सकती है ?

छाँड़हु वचन कि धीरज—

या तो वचन (प्रतिज्ञा) छोड दो या धीरज धरो, स्त्रियों की तरह करुणा मत करो। शरीर, स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति और धरती सत्यवादी पुरुषों क लिए तिनके के समान कही गई हैं।

मर्मवचन सुनि—

इस तरह की मार्मिक (चुभने वाली) बातें सुनकर राजा कहते हैं,—चाहे जो कह, इसमें तेरा कुछ दोष नहीं है। मेरा काल पिशाच के समान लगा हुआ तुमसे यह कहला रहा है।

चहत न भरत—

भरत तो राज-पद भूलकर भी नहीं चाहते, परन्तु होनहार के वश तेरे हृदय में यह कुमति बसी है। वह सब मेरे पाप का फल है, जिससे विधाता कुसमय में उलटा हुआ है।

सुबस बसिहि फिरि—

फिर भी अयोध्या अच्छी तरह से ही बसेगी, सब गुणों के धाम रामचन्द्र राजा होंगे। सब बन्धुगण उनकी सेवा करेंगे और तीन लोक में रामचन्द्र की बडाई होगी।

तोर कलंक मोर—

पर तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी न मिटेगा और न कभी ससार से जायगा। अब तुझे जो कुछ अच्छा लगे वही कर और मेरी आँखों के आगे से हट कर—ओट में जाकर—मुँह छिपाकर बैठ।

जब लगि जिअऊँ—नाहरू=सिंह या वाज।

हाथ जोडकर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता हूँ, तब तक तू और कुछ मत कह। अरी अभागिनी, फिर पीछे ऐसे पछता-

एगी जैसे कोई सिंह के लिए गाय को मारे अथवा बाज़ के लिए गाय को मारे (बाज गोमास नहीं खाता, आशय यह है कि जो तू भरत को राज्य देने के लिए राम को वन भेजती है सो भरत को राज्य अच्छा नहीं लगता)।

परेउ राउ कहि कोटि विधि—निदान=अन्त।

राजा ने करोडों तरह से समझाकर कहा कि क्यों तू वश का अन्त करती है, (और उसे मानते न देख ऐसा कह) वे धरती पर गिर पडे। कपट-सियानी कैकेयी कुछ कहती नहीं है, ऐसा मालूम होता है मानों मसान जगाती है कोई अनुष्ठान करती है (जिसमें बोलने से सिद्धि नहीं होगी)।

राम राम रटि विकल—

राम राम रटते हुए राजा व्याकुल हो गये। वे ऐसे मालूम होते हैं, मानों विना पख के पक्षी व्याकुल हो। वे हृदय मे मनाने लगे कि सवेरा न हो और यह बात कोई जाकर रामचन्द्रजी से न कह दे।

उदय करहु जनि—

हे रघुकुल के गुरु सूर्य भगवान्, आप उदय न हों, क्योंकि अयोध्या को देखकर आपके हृदय में शूल होगा। राजा की प्रीति और कैकेयी की कठोरता इन दोनों को ब्रह्मा ने सीमा बना दिया, अर्थात् राजा के समान कोई प्रीतिमान् नहीं और कैकेयी के बराबर कोई कठोर नहीं।

बिलपत नृपहिं भयउ—भिनुसारा=सवेरा

राजा को विलाप करते हुए सवेरा होगया, द्वारपर वीणा, बाँसुरी और शङ्ख आदि बाजों के शब्द होने लगे। भाट यश वर्णन करने लगे और गायक गाने लगे, सुनकर राजा को वे ऐसे मालूम होते हैं मानों वाण लगते हों।

धन्य जनम जगतीतल—

पृथ्वी-तल पर उसी का जन्म धन्य है, जिसके चरित्र को सुनकर पिता को आनन्द हो। चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) उसकी मुट्ठी में रहते हैं, जिसको माता-पिता प्राण के समान प्यारे होते हैं।

आयसु पालि—

आपकी आज्ञा का पालनकर और जन्म का फल पाकर तुरन्त ही लौट आऊँगा, (इसलिए) आज्ञा दीजिये। मैं माता से विदा माँग आऊँ, फिर आपके चरण छूकर वन को जाऊँगा। इस प्रकार से कहकर, रामचन्द्र जी वहाँ से चले गये। शोक-विह्वल (शोक में दुखी) राजा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

राम-सीता संवाद

कहि प्रियवचन—परितोष=सन्तोष। विपिन=जंगल।

विचारपूर्ण प्रियवचन कहकर रामचन्द्र जी ने माता को सन्तुष्ट किया फिर वन के गुण-दोष कहकर जानकी को समझाने लगे।

मातु समीप कहत—

माता के पास होने के कारण जानकी जी को कुछ भी कह में सकुचाते हैं, परन्तु मनमें समय (आपत्काल) समझकर बोले— हे राजकुमारी, मेरी शिक्षा सुनो, अपने मनमें और कुछ न विचारो।

आपन मोर नीक जो—

यदि अपनी और मेरी भलाई [illegible] कर घर ही रहो। हे [illegible] मेर सास की सेवा और स[illegible] की [illegible]

गद्दि तें अधिक धरम—

आदर पूर्वक सास-ससुर की सेवा करो इससे बढकर दूसरा धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे स्मरण करेंगी और भोली बुद्धिवाली वे प्रेम के कारण बेचैन हो जायँगी—

तब तब तुम कहि कथा—

हे सुन्दरी तब-तब तुम पुरानी कथाओं को कहकर मीठी वाणी से इन्हें समझाना। हे सुमुखी, मुझे सैकड़ो सौगन्द हैं, यह मैं सीधे स्वभाव से ही कहता हूँ, कि तुमको माता की भलाई के लिए ही घर में छोड़ता हूँ।

गुरु श्रुति समत धरमफल—

तुम यहाँ गुरु और वेद से कहे हुए धर्म के फल को बिना क्लेश के ही पा जाओगी। इस विषय में तुम हठ मत करो क्योंकि हठ करने से गालव मुनि[1] और राजा नहुष[2] आदि सबने कष्ट ही सहे हैं।

---

१ गालव मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे। विद्याध्ययन समाप्त करके इन्हों ने गुरुदक्षिणा देने का हठ किया। गुरु ने ८०० श्यामकर्ण घोड़े माँगे। इनको इकट्ठा करने में गालव मुनि को बहुत कष्ट सहने पड़े।

२ राजा नहुष बड़े ज्ञानी, सन्तोषी और धर्मात्मा थे। एक बार इन्द्र ब्रह्महत्या के कारण छिप गये और इन्द्रासन खाली हो गया। उस समय राजा नहुष इन्द्र हुए। तब उन्होंने इन्द्राणी की शय्यापर आने का दुराग्रह किया। इन्द्राणी ने बृहस्पति की सम्मति से कहला भेजा कि यदि तुम पालकी पर बैठकर और उस पालकी को ऋषियों से उठवाकर आओ तो मैं पति-भाव से तुम्हारा स्वागत करूँगी। राजा ने सप्तर्षियों से प्रार्थना की; वे परोपकार मानकर पालकी कन्धे पर लेकर पहुँचाने चले। कामातुर राजाने रास्ते में मुनियों को जल्दी चलने के लिए संस्कृत में 'सर्प, सर्प' अर्थात् 'जल्दी, जल्दी चलो' कहा। मुनियों ने कुपित हो

धन्य जनम जगतीतल—

पृथ्वी-तल पर उसी का जन्म धन्य है, जिसके चरित्र को सुनकर पिता को आनन्द हो। चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) उसकी मुट्ठी मे रहते हैं, जिसको माता-पिता प्राण के समान प्यारे होते हैं।

आयसु पालि—

आपकी आज्ञा का पालनकर और जन्म का फल पाकर तुरन्त ही लौट आऊँगा, (इसलिए) आज्ञा दीजिये। मैं माता से विदा माँग आऊँ, फिर आपके चरण छूकर वन को जाऊँगा। इस प्रकार से कहकर, रामचन्द्र जी वहाँ से चले गये। शोक विह्वल (शोक मे दुखी) राजा ने कुछ उत्तर नही दिया।

राम-सीता सवाद

कहि प्रियवचन—परितोष=सन्तोष। विपिन=जगल।

विचारपूर्ण प्रियवचन कहकर रामचन्द्र जी ने माता को सन्तुष्ट किया फिर वन के गुण-दोष कहकर जानकी को समझाने लगे।

मातु समीप कहत—

माता के पास होने के कारण जानकी जी को कुछ भी कहने मे सकुचाते हैं, परन्तु मनमे समय (आपत्काल) समझकर बोले—हे राजकुमारी, मेरी शिक्षा सुनो, अपने मनमें और कुछ बात न विचारो।

आपन मोर नीक जो—

यदि अपनी और मेरी भलाई चाहती हों, तो मेरी बात मानकर घर ही रहो। हे भामिनि! इसमे मेरी आज्ञा सास की सेवा और सब तरह से घर की भलाई है।

नर अहार रजनीचर—

वहाँ राक्षस मनुष्यो का आहार (भोजन) करते हैं, और कपट से करोडो वेष बना लेते हैं। पर्वतीय (पहाडी) जल बहुत लगता है, इस प्रकार वन की विपत्तियाँ कही नहीं जा सकती।

ब्याल कराल विहग—कराल=डरावने । विहग=पक्षी। गहन=जगल । भीरु=डरपोक।

वन मे डरावने साँप तथा भयङ्कर पक्षी रहते हैं, स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले झुण्ड के झुण्ड राक्षस घूमा करते हैं। हे मृगनयनी, वन की याद आते ही बडे-बडे धीर भी डर जाते हैं, फिर तुम तो डरपोक स्वभाव की हो।

हसगवनि तुम नहिं—मराली=हंसिनी । लवणपयोधि=खारा समुद्र।

हे हंस के समान चलनेवाली! तुम वन के योग्य नहीं हो, तुम्हारा वन मे जाना सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे। मानसरोवर के जलरूपी अमृत से पली हुई—हंसिनी, क्या खारे समुद्र मे जीवित रह सकती है?

नव रसाल वन—रसाल=आम।

नये आमों के बगीचे मे विहार करनेवाली कोयल, क्या करील के जगल में शोभा पा सकती है? हे चन्द्रवदनि, वन मे बडा दुःख है, ऐसा हृदय मे विचार कर तुम घर पर ही रहो।

सहज सुहृद गुरु—

स्वभाव ही से भला चाहनेवाले अपने गुरु तथा स्वामी की शिक्षा को माथे चढा कर जो नहीं मानता, वह पीछे मन में खूब पछताता है और उसके हित की हानि भी अवश्य होती है।

सुनि मृदुवचन मनोहर—ललित=सुन्दर।

प्रियतम के मनोहर, कोमल वचन सुनकर, सीता जी के सुन्दर

मै पुनि करि प्रमान=

हे सयानी, हे सुमुखि, मैं पिता की आज्ञा को पूरा करके फिर जल्दी ही लौट आऊँगा। दिन जाते देर नहीं ।
हे सुन्दरी, हमारी शिक्षा को सुनो।

जौ हठ करहु प्रेमवस—घाम=धूप। कानन=जंगल।

हे प्यारी, यदि प्रेम के वश मे होकर हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठोर और भयङ्कर है, वहाँ तेज़ धूप, बड़ी सरदी, अत्यत (वर्षा) और तेज़ वायु चलती है।

कुस कटक— कटक= काँटे। पयादेहिं = पैदलही। पदत्राना=जूता। मजु=सुदर। भूमिधर=पहाड।

रास्ते में कुशा, काँटे और तरह-तरह के कङ्कड हैं, जिनमें बिना जूते के पैदल चलना पडेगा। तुम्हारे चरणकमल सुन्दर और कोमल है, किंतु रास्ते में दुर्गम और बडे बडे पहाड हैं।

कन्दर खोह—निहारना=देखना। वृक=भेडिया। केहरि= शेर। नाग=हाथी।

कन्दरा, खोह, नदी-नाले ऐसे दुर्गम और गहरे हैं जिनकी ओर देखा तक नहीं जाता। भालू, बाघ, भेडिये, शेर और हाथी ऐसा शब्द करते हैं—ऐसा चिंघाडते हैं—कि उनकी आवाज़ सुन धीरज भाग जाता ह।

भूमिसयन—वसन=कपडे। असन=खाना।

भूमि पर सोना, पेडो की छाल के कपडे पहनना, और कन्द मूल-फलों का भोजन होगा। वे भी क्या सदा (प्रतिदिन) मिलेंगे? नहीं, समय अनुकूल होगा तो मिलेंगे।

पालकी फेंक दी और शाप दिया कि जा तू सर्प होजा। नहुष ने स होकर बहुत समय तक दुःख उठाया और द्वापर-युग में धर्मराज युधि से प्रश्नोत्तर होने पर उनका शाप से उद्धार हुआ।

भोग रोग सम—

पति के बिना भाग-विलास रोग के समान है और आभूषण बोझ हैं और ससार यमलोक की पीडा के समान है। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना ससार में कहीं भी, कुछ भी मेरे लिए सुख देने वाला नहीं है।

जिय बिनु देह—विधु=चन्द्रमा।

जैसे जीव के बिना शरीर और जल के बिना नदी शोभा नहीं पाती, हे नाथ, वैसे ही पुरुष के बिना स्त्री है। हे स्वामी, आपके साथ में रहकर, शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान आपके मुख को देखकर, मुझे सब सुख मिलेंगे।

खग मृग परिजन—परिजन =कुटुम्बी। दुकूल=वस्त्र।

हे स्वामी! आपके साथ में रहने पर—पक्षी और मृग मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर होगा और वृक्षों की छाल सुन्दर वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की झोंपडी) स्वर्ग के समान सुख देने वाली होगी।

वनदेवी वनदेव—किसलय=पत्ते। साथरी=बिछौना। तुराई=तुलाई।

वनदेवी और वन के देवता, सास-ससुर के समान मेरी देख-रेख करेंगे। स्वामी के साथ मे कुश और नर्म पत्तों का बिछौना कामदेव की तुलाई (शय्या) के समान होगा।

कंद मूल फल अमिय—सौध=महल।

कन्द, मूल और फलों का भोजन अमृत के समान और पर्वत अयोध्या के सौ राजमहलों के समान होंगे। स्वामी के कमल के समान चरणों को क्षण-क्षण मे देखकर ऐसी प्रसन्न रहूँगी, जैसे दिन में कोकी (चकवी) रहती है। चकवा चकवी दिनमें एक साथ रहने के कारण प्रसन्न रहते हैं और रात को अलग अलग रहने के कारण दुःखी।

बन दुख नाथ कहे—

हे नाथ, आपने कहा है कि वन मे बहुत से दुःख, भय, क्लेश

नेत्रो में जल भर आया। यह शीतल (मन को शान्त करने वाली) शिक्षा उनके लिए वैसी ही जलानेवाली हुई, जैसे चकवी को शरद् काल की चाँदनी रात होती है।

उतरु न भाव—अवनिकुमारी=पृथ्वी की कन्या, सीता। बिलोचन=आँख।

जानकी जी व्याकुल हो गईं, उनसे कुछ उत्तर नहीं देते बनता। उन्हें यह सोचकर बड़ा दुःख हुआ कि पवित्र प्रेमी स्वामी, मुझे त्यागकर जाना चाहते हैं। आँसों के जल को जबरदस्ती रोककर पृथ्वी की कन्या सीता जी धीरज धारण करके—

लागि सासपद—

सास के चरणों में लगकर और हाथ जोड़कर कहने लगीं,—हे देवि, मेरी इस बड़ी ढिठाई को क्षमा कीजिये। प्राणपति ने मुझे वही शिक्षा दी है, जिसमें मेरा परम कल्याण हो। परन्तु मैंने मन में सोच कर देखा कि पति की जुदाई के समान संसार में कोई दुःख नहीं है।

प्राणनाथ करुणायतन—विधु=चन्द्रमा।

हे प्राणनाथ! हे दयानिधान! हे सुन्दर! हे सुख देनेवाले! हे सुजान! हे रघुकुलरूपी कुमुद वन के चन्द्रमा, आपके बिना, देवलोक भी नरक के समान है।

मातु-पिता—

माता, पिता, बहन, प्रिय भाई, प्यारे कुटुम्बी, मित्र मंडली, सास-ससुर, गुरु, नातेदार, सहायक और सुन्दर-सुखदायक सुशील पुत्र—

जहँ लगि नाथ नेह—तरनि=सूर्य।

जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, हे नाथ, बिना पति के वे स्त्री को सूर्य से भी बढ़कर तपानेवाले हैं। शरीर, सम्पत्ति, घर, धरती, नगर और राज्य प्रियतमके बिना सब शोक के समाज (समूह) हैं।

सिंह की स्त्री को खरगोश और सियार नहीं देख सकते, अर्थात आपके रहते मेरी ओर कोई आँख उठा नहीं सकता ? हे नाथ, क्या में सुकुमारी हूँ, और आप वन के योग्य हैं ! क्या आपको तप करना चाहिये और मुझे भोग-विलास !

एसहु वचन कठोर—

हे स्वामी, आपके ऐसे कठोर वचन सुनकर भी मेरा हृदय नहीं फटा, तो प्रभु के कठिन वियोग का दुःख इन प्राणों को अवश्य सहना होगा।

भरतागमन के समय लक्ष्मण का क्रोध और श्रीराम का उन्हें समझाना

लपन लखेउ प्रभु—खँभारु = चिंता, घबराहट।

लक्ष्मण ने देखा कि स्वामी के मन में घबराहट हुई है, वे समय के अनुसार नीति विचार कर कहने लगे। हे गुसाईं, बिना पूछे कुछ कहता हूँ, इसके लिए क्षमा करना, क्यों कि समय पर ढिठाई करने वाला सेवक ढीठ नहीं कहा जाता। हे नाथ आप तो सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं, पर मैं सेवक भी अपनी समझ के अनुसार, कुछ कहता हूँ।

नाथ सुहृद सुठि—

हे नाथ आप अत्यन्त शुद्ध हृदयवाले, सरल-चित्त और शील तथा स्नेह की खान हैं। इससे आपके हृदय में सब पर प्रीति और विश्वास है और सबको आप अपने ही समान समझते हैं।

विषयी जीव—

परन्तु विषयी-जीव प्रभुता पाकर, जानबूझ कर मूर्ख और अज्ञान के वश हो जाते हैं। भरत नीति में तत्पर, सज्जन और चतुर हैं और स्वामी के चरणों में उसका प्रेम है, यह सारा संसार जानता है।

सताप होंगे, परन्तु हे कृपानिधान, वे सब मिलकर स्वामी के वियोग के एक लवलेश की भी बराबरी नहीं कर सकते—अर्थात वियोग का दु ख उन सब दु खों से भयकर है।

अस जिय जानि—

हे चतुर-शिरोमणि, ऐसा मनमें समझकर मुझे साथ ले चलिये, यहाँ मत छोडिये। हे प्रभो, बहुत क्या विनती करूँ ? आप अन्तर्यामी (सब के हृदय के भीतरी भावों को जानने वाले) तथा करुणामय हैं।

राखिय अवध जो—

हे दीनबन्धो, हे सुन्दर, हे सुख देने वाले, हे शील और प्रेम के निधान, यदि आप यह जानते हों कि अवधि (१४ वर्ष) तक मेरे प्राण बने रहेंगे तो मुझे अयोध्या में छोड जाँय। भाव यह है कि आप के बिना मेरे प्राण न रहेंगे।

मोहिं मग चलत न—हारि=थकावट। सरोज=कमल।

आपके चरण-कमलों को क्षण-क्षण देखने से मुझे राह चलने में थकावट न होगी। हे स्वामी, मैं सब तरह से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग-गमन से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करूँगी।

पांय पखारी बैठि—बाउ=हवा। श्रमकन=पसीने की बूँदे।

वृक्ष की छाया में बैठकर पाँव धोकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी। पसीने की बूँदों सहित प्राणपति के श्याम शरीर को देखकर मेरे लिए दु:ख करने का अवसर कहाँ रहेगा ?

सम महि तृन तरु—डासी=बिछाकर। पलोटहि=दबाकर। बयार=हवा। जोही=देखकर।

समतल भूमि पर घास और वृक्षों के पत्ते बिछाकर, यह दासी सारी रात पाँव दाबेगी। बारबार आपकी कोमल मूर्त्ति देखकर मुझे गरम हवा (लू) न लगेगी।

को प्रभुसग—

स्वामी के साथ रहते हुए मेरी ओर देखनेवाला कौन है ? जैसे

सिंह की स्त्री को खरगोश और सियार नहीं देख सकते, अर्थात् आपके रहते मेरी ओर कोई आँख उठा नहीं सकता ? हे नाथ, क्या मैं सुकुमारी हूँ, और आप वन के योग्य हैं ! क्या आपको तप करना चाहिये और मुझे भोग-विलास !

एतहु वचन कठोर—

हे स्वामी, आपके ऐसे कठोर वचन सुनकर भी मेरा हृदय नहीं फटा, तो प्रभु के कठिन वियोग का दुःख इन प्राणों को अवश्य सहना होगा।

भरतागमन के समय लक्ष्मण का क्रोध और श्रीराम का उन्हें समझाना

स्पन स्वेउ प्रभु—सँभारु = चिंता, घबराहट।

लक्ष्मण ने देखा कि स्वामी के मन में घबराहट हुई है, वे समय के अनुसार नीति विचार कर कहने लगे। हे गुसाईं, बिना पूछे कुछ कहता हूँ, इसके लिए क्षमा करना, क्यों कि समय पर ढिठाई करने वाला सेवक ढीठ नहीं कहा जाता। हे नाथ आप तो सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं, पर मैं सेवक भी अपनी समझ के अनुसार, कुछ कहता हूँ।

नाथ सुहृद सुठि—

हे नाथ आप अत्यन्त शुद्ध हृदयवाले, सरल-चित्त और शील तथा स्नेह की खान हैं। इससे आपके हृदय में सब पर प्रीति और विश्वास है और सबको आप अपने ही समान समझते हैं।

विषयी जीव—

परन्तु विषयी-जीव प्रभुता पाकर, जानबूझ कर मूर्ख और अज्ञान के वश हो जाते हैं। भरत नीति में तत्पर, सज्जन और चतुर है और स्वामी के चरणों में उसका प्रेम है, यह सारा संसार जानता है।

ने कलङ्क नहीं दिया ? भरत ने यह उचित उपाय ही किया है क्योंकि शत्रु और ऋण को थोड़ा भी शेष नहीं रहने देना चाहिए।

एक कीन्ह नहिं—

भरत ने एक ही बात अच्छी नहीं की, जो रामचन्द्र जी को असहाय जानकर उनका निरादर किया। सो आज युद्ध में रामचंद्र जी का क्रोधपूर्ण मुख उसे अच्छी तरह मालूम हो जायगा।

इतना कहत नीति—

इतना कहते कहते लक्ष्मण नीति रस (नीति की बात) भूल गये और रोमांच के रूप में उनके शरीर में वीर रस का वृक्ष फूल गया अर्थात् कहते कहते नीति की बात भूल कर वे वीरता की बात कहने लगे। प्रभु के चरणों में प्रणाम कर उनकी रज मस्तक पर रख कर लक्ष्मण ने अपने स्वाभाविक बल को सत्य-सत्य कहा।

अनुचित नाथ न—

वे बोले—हे नाथ आप मेरी बात को अनुचित न मानें, भरत ने हमें मारने के लिए थोड़ा उपाय नहीं किया। हम कहाँ तक सहें, और मन मारे रहें, जब कि नाथ हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है।

छत्रि जाति रघुकुल जनम—

मैं जाति का क्षत्रिय हूँ, रघुकुल में मेरा जन्म है, और रामचंद्र का मैं छोटा भाई हूँ, यह संसार जानता है। धूलि के समान नीच और कौन है, वह भी लात मारने से सिर पर चढ जाती है (फिर मैं चुप क्यों रहूँ ?)

उठि कर जोरि रजायसु—

लक्ष्मण जी ने उठकर हाथ जोड़ कर रामचंद्र जी से आज्ञा माँगी, मालूम हुआ कि वीर रस सोते से जाग उठा है। सिर पर जटा बाँधकर कमर में तरकस कस कर और हाथ में धनुषबाण लेकर (वे बोले कि) —

आजु राम सेवक जसु—

आज मैं रामचन्द्र जी का सेवक होने का यश लूँगा और युद्ध में भरत को शिक्षा दूँगा। रामचन्द्र के अनादर करने का फल पाकर दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) रण की सेज पर सोवें।

आइ भला बन सकल—

आज सारा समाज अच्छा आ जुटा है। पिछला क्रोध (जो अयोध्या से चलते वक्त हुआ था) वह भी आज मैं प्रकट करूँगा। जिस प्रकार सिंह हाथियों के झुण्ड का मर्दन करता है, और बाज जिस प्रकार लवा पक्षी पर झपटता है।

तैसेहि भरतहिं सेन—

उसी प्रकार सेना और भाई के साथ भरत को तिरस्कृत करके रण-क्षेत्र में मार गिराऊँगा। यदि स्वय शिवजी भी उनकी सहायता के लिये आवें, तो भी मैं उन्हें रण में मार गिराऊँगा। यह मैं रामचन्द्रजी की शपथ करके कहता हूँ।

अति सरोष माखे लखन—

लक्ष्मण जी को बड़े क्रोध में भरे देखकर तथा उनकी शपथ को सत्य जान कर सब लोग तथा लोकपाल डर गए और घबरा कर उन्होंने शीघ्रता पूर्वक भागना चाहा।

जग भय मगन गगन—

सारे ससार में भय छा गया, उस समय लक्ष्मणजी के बाहु-बल की प्रशसा करती हुई आकाशवाणी हुई—हे तात, तुम्हारे प्रताप और प्रभाव का वर्णन कौन कर सकता है और उसे कौन जानने वाला है?

कबीर

वैराग्य में अनुराग

मन लागो—हे यार, मेरा मन तो फ़क़ीरी में लग गया है, जो सुख मैंने प्रभु के भजन मे पाया है वह सुख अमीरी में नहीं है। सब का भला बुरा—ऊँच नीच वचन—सह लो और गरीबी में ही गुज़ारा करो हमारा रहना तो प्रेम नगर में है और सबूरी (सतोष) से सब भली होती आई है। हाथ में कूँडी है, बगल में सोटा है पर चारों दिशाओं मे—सर्वत्र ही—अपनी जागीर है, जहाँ डेरा लगा दो वही अपना स्थान है। हे जीव! आख़िर यह शरीर ख़ाक मे मिल जायगा सो क्यो मगरूरी (घमण्ड) में फिरता है! कबीर कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, साहब (परमात्मा) सतोष में ही मिलते हैं।

प्रोत्साहन

सूर सग्राम—खेत=युद्ध का मैदान। साही=शाही, सवार, सैनिक। समसेर=तलवार। जूझिहै=लड़ेगा। भाजै=दौड़ जाते हैं।

शूरवीर सग्राम को (युद्ध को) देखकर भागता नहीं है, जो देखकर भाग उठता है वह तो वीर नहीं है। काम, क्रोध, मद (अभिमान) और लोभ आदि (भीतर के शत्रुओ) से उसे घमसान युद्ध के मैदान मे लड़ना है। सील (उत्तम आचरण)

सत्य और संतोष उस युद्ध में सिपाही हैं और (प्रभु के) नाम की तलवार वहाँ खूब चलती है (शील, सत्य, संतोष तथा प्रभु के नाम द्वारा काम क्रोध, मद, लोभ से लड़ा जा सकता है) कबीर कहते हैं कि उस मैदान मे कोई शूरवीर ही लड़ेगा, कायरों की भीड तो वहाँ से तुरत ही भाग उठती है।

सेवक और दास का अंग

सेवक सेवा में रहै—जो सेवक सेवा में लगा रहे—जो प्रभु की भक्ति में लीन रहे, वही सेवक कहाता है। कबीरदास कहते हैं कि सेवा के बिना कभी कोई सेवक नहीं हो सकता। कबीरदास अपने प्रभु (परमात्मा) की उपासना दास भाव से करते हैं, सेवक से उनका तात्पर्य प्रभु भक्त से है।

सेवक स्वामी एक मति—मति=बुद्धि, राय, सलाह। भाय=भाव।

सेवक और स्वामी एक राय के होते हैं, जो उनकी सलाह आपस में मिल जाय। प्रभु चतुराई पर—नौकर की कुशलता पर नहीं रीझते अपितु मन के भावों पर रीझते हैं।

द्वार धनी—नेवाजई=कृपा करेगा, अनुग्रह करेगा।

धनी के दरवाज़े पर पड़े रहो, उसी की ठोकरें खाओ, जो दरवाजा छोड कर और कहीं नहीं जाओगे तो कभी न कभी तो धनी अवश्य कृपा करेगा।

निरबधन बँधा रहै—निरबधन=बिना किसी बधन के।

जो बिना किसी बधन के भी हमेशा बँधा रहता है, अर्थात् अपनी इच्छा से ही प्रभु की चाकरी में लगा रहता है, और जो प्रभु के बधन मे—नियत्रण में—रहता हुआ भी स्वतत्र है, इसी प्रकार जो कर्म करते हुए ही उन कर्मों में लिप्त नहीं होता वह दास कहाता है।

वही सूरमा धन्य है, जो अपने स्वामी के लिए लडता है, और चाहे पुरजा-पुरजा (टुकडा-टुकडा) हो जाय तो भी लडाई का मैदान नहीं छोडता।

सूरा मोह मराहिय—लोह=लोहे का कवच। जूझै=लडे। वद=बधन। अग=शरीर।

वही सूरमा धन्य है, जो अपने शरीर पर लोहे का कवच नहीं पहनता। बल्कि जो सब बधन खोलकर (छाती नगी करके) और शरीर का मोह छोडकर मैदान में लडता है।

अब तो जूझै ही—अब तो केवल लडने-मरने से ही काम बनता है, वापिस जाने मे घर बहुत दूर रह गया है। अपने स्वामी को अपना सिर सौंपते हुए, हे सूर! सोच नहीं करना चाहिये।

सूरा सीस उतारिया=शूरवीर ने जब अपने शरीर की आशा छोडदी और अपना सिर उतार दिया, तब गुरु अपने (अनन्यभक्त) दास को आगे से आता देख प्रसन्न हो गया।

साधु सती और सूरमा—पटतर=समता, बराबरी, उपमा। पथ=रास्ता। ठाहर=ठिकाना, स्थान।

साधु, सती और सूरमा इनकी समता कोई नहीं कर सकता, ये अगम (बड़े टेढ़े) रास्ते पर—चलते हैं, और फिसलने पर इनके लिए कोई जगह नहीं रहती।

सिर राखे सिर जात—सिर रखने से—सिर का मोह करने से—सिर (मान) चला जाता है। सिर कटवाने से सिर (मान) रहता है। जिस तरह दीपक की जलती बत्ती का अगला हिस्सा काटने से और भी अधिक प्रकाश होता है।

लड़ने को सब ही चले—सब लोग अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बाँधकर लडने को चले, पर अपने स्वामी के सामने कोई विरला ही लड सकेगा—अर्थात् परमात्मा को कोई विरला ही सकेगा।

सूरा क मैदान मे—शूरवीरों के मैदान (लडाई) मे कायर आकर फँस गया है, वह न तो वहाँ से दौड ही सकता है, और न लड ही सकता है पर मन ही मन पछताता है (कि मैं वहाँ क्यों आगया।)

रणहिं धँसा जो—ऊनरा=उद्धार हो गया। गिरह=गृह, घर। बधावा=बधाई।

युद्ध के मैदान में जो घुस गया उसका उद्धार हो गया और वह अगले घर में (परमात्मा के घर में) स्थान पागया। जब वह उस घर में पहुँचता है तो बधाई क बाजे बजते हैं, इसके सिवाय उसे दूसरी आशा भी नहीं है।

ऊँचा तरवर गगन को—पचना=यत्न कर कर के हार जाना। भूर=खाली, व्यर्थ ही।

आकाश रूपी वृक्ष (परमात्मा का स्थान) बहुत ऊँचा है उसके निर्मल फल बहुत दूर हैं, उसके पाने में अनेक सयाने यत्न कर के हार गये और खाली रास्ते में ही मर गये।

दूर भया तो क्या—वह परमात्मा दूर हुआ तो क्या हुआ, सद्गुरु उसे मिला देते हैं। उसी सद्गुरु के चरणों में अपना सिर सौंपते ही कार्य की सिद्धि हो जाती है।

खोजी को डर—खोजी को बहुत डर रहता है, उसे पल पल में वियोग सहना पडता है, (कभी दिखता है कि अब उद्देश मिल गया, अब सयोग होगया है, पर थोडी देर बाद फिर वियोग हो जाता है) प्रण रखते हुए (खोजते हुए) जो शरीर गिरे वह शरीर उस साहब (परमात्मा) के ही योग्य है।

अग्नि आँच सहना—अग्नि क ताप को सहना आसान काम है, और तलवार की धार पर चलना भी सुगम है, परन्तु एक रस (जैसा शुरू में हो वैसा अत तक) प्रेम निभाना बड़ा कठिन है।

मङ्गल-सूचक पत्ते आदि बँधते थे, वे सब केवल एक सतगुरु के नाम के बिना अपना जन्म हार बैठे—अपना जन्म व्यर्थ गँवा बैठे।

ऊजड़ खेड़े ठीकरी—खेड़ा=गाँव।

उजाड़ गाँव मे कई कुम्हार ठीकरे गढ़-गढ़ कर (बर्तन बना-बना कर) चले गये। उन बेचारों का तो कहना ही क्या जब कि रावण सरीखा लंका का सरदार भी चल बसा।

पाँच तत्व का—पूतरा=पुतला। ठाम=स्थान।

पाँच तत्त्व—पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश, इन पाँच तत्त्वों के पुतले का नाम ही मनुष्य रख दिया है। और यह चार दिनों के लिए—छोटे से जीवन के लिए फिर फिर स्थान रोकना फिरता है।

पक्की खेती देख—अजहूँ=अब भी। झोला=झोंका, आपत्ति।

हे किसान, खेती को पकी देखकर तू घमण्ड क्यों करता है अब भी इसको नष्ट करने को बहुत सी आपत्ति (आँधी का झोंका आदि) शेष हैं, इसलिए जब खेती घर आ जाय तब समझना।

जेहि घट प्रेम न—रसना=जीभ। खये=नष्ट हो गये।

जिसके हृदय में प्रेम या भक्ति नहीं और जिस की जीभ प्रभु-नाम नहीं लेती, वे मनुष्यरूपी-पशु संसार में उत्पन्न होकर व्यर्थ ही नष्ट हो गये।

ऐसा यह—यह संसार सेमर के फूल के समान है—अर्थात् जैसे सेमर का फूल केवल तीन-चार दिन चटक दिखाकर फिर मुरझा जाता है और उसका रंग भी बदल जाता है ऐसे ही यह संसार भी है। अतः केवल दस दिन के जीवन में इस झूठी माया में न फँस।

पाँच पहर धंधे—पहर=दिन रात का आठवाँ हिस्सा।

पाच पहर के लगभग समय तो काम-काज मे बीत गये, बाकी तीन पहर सोते रहे (दिन रात मे केवल आठ ही पहर होते हैं) इस तरह एक घडी भी हरि का भजन नहीं किया, अब मुक्ति कहाँ से होवे।

सपने सोया मानवा—सपने मे सोये हुए (अज्ञान मे फँसे हुए) मनुष्य ने जब आँख खोल कर देखा तो पता लगा कि न कुछ लेना है और न देना है पर जीव व्यर्थ ही लूट में फँसा हुआ है।

घर रखवारा—बाहरा=बतराया बेहोश। ऊबरे=बच जायगा। - घर की रखवारी करने वाला बेहोश है, इसलिए चिडियो ने खेत खा लिया है। अब भी आधा बच जायगा, इस लिये यदि होश में आ सके तो आ। अर्थात् मनुष्य जीवन सब योंही व्यर्थ गया अब भी यदि तू चेत जाय तो कुछ सुधार हो सकता है।

माटी कहे—मिट्टी कुम्हार से कहती है कि तू मुझे क्या रौंदेगा? एक दिन ऐसा होगा कि मैं तुझे (मरने पर) रौदूँगी।

जिन गुरु की चोरी करी—गादुर=चमगादड। अरध=नीचे।

जिन्होंने गुरु की चोरी की है, जो (प्रभु के) नाम के गुन भूल गये हैं उन्हें विधि ने चमगादड बनाया है, वे नीचे मुख करके लटकते रहते हैं। अर्थात् जो गुरु का नाम भूल गये हैं, वे अन्धेरे मे जहाँ ज्ञान नहीं पहुँचता वहाँ औंधे मुँह लटकते रहते हैं।

कहा कियो हम आई—इन्होंने यहाँ आकर—इस ससार में आकर—क्या किया, और यहाँ से जाकर ये क्या करेंगे? न इधर के हुए न उधर के, अर्थात् न ससार-सुख ही पाया न ईश-भजन ही किया—अपना मूल (मनुष्य जीवन) भी गँवाकर चल दिये।

जगतहि में हम रांचिया—राँचिया=अनुरक्त हो गये, फँस गये। छीजै=छीजा होना, सूखना।

झूठी कुल की लाज से हम जगत ही मे फँस गये-और प्रभु-नाम-रूपी जहाज़ पर नहीं चढ़े—प्रभुनाम नहीं लिया। अब शरीर सूख जायगा, और कुल नष्ट हो जायगा।

मोर तोर की जवरी—जेवरी=रस्सी।

मेरी और तेरी की रस्सी ने—यह मेरा है, यह तेरा है, इस माया के बन्धन ने—यह सारा संसार बाँध लिया है। परन्तु कबीरदास इसमें क्यों बँधें जिनको प्रभुके नामका सहारा है। अर्थात् प्रभु-नाम के भक्त इस माया में नहीं फँसते।

जिन जाना निज गेह—जिन्होने अपने गेह (घर) को समझ लिया है कि यह घर केवल चार दिन का है वे क्यों मित्रता जोडते फिरें ? जैसे दूसरे के घर में अतिथि हमेशा विरक्त रहता है, वहाँ किसी पदार्थ से ममता नहीं जोडता, उसी प्रकार जिन्होंने यह समझ लिया है कि यह ससार-रूपी घर केवल चारदिन का है, वे यहाँ के मोह ममता मे नहीं फँसते।

जा जानहु जिव—सार करना=रक्षा करना, सार्थक करना। जियरा=जीव।

जिसको तुम अपना जीव समझते हो, उस जीव को सार्थक बनाओ, क्योंकि ऐसा-जीव रूपी पाहुना (अतिथि) दूसरी बार न मिलेगा— अर्थात् यह मनुष्य जीवन दुबारा न मिलेगा।

बनजारा का बैल ज्यौं—बनजारा=वह व्यक्ति जो बैलों पर अन्न लाद कर बेचने के लिए एक देश से दूसरे देश को जाता है। टाडा=अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलो या पशुओं का झुण्ड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं।

बनजारों के बैलों के झुण्ड के समान इस ससार में जीव समूह आकर ठहरा है, उनमें से किसी एक ने तो अपने मूल का दूना कर लिया और कोई अपना मूल ही गँवा कर चल दिया

है। अर्थात् संसार में कई जीव आकर अपना जीवन सफल कर जाते हैं, और कोई यों ही गँवा देते हैं।

या दुनिया में आइ क—पैंठ=हाट, बाज़ार।

इस दुनियाँ मे आकर तू ऐंठ छोड दे और जो कुछ लेना हो सो ले ले क्योंकि यह बाज़ार या हाट उठने वाली है—अर्थात् यह मनुष्य जीवन-क्षणिक है, जो कुछ धर्म-कर्म करना हो कर ले।

तन सराय मन पाहरु—मनसा=मनशा, कामना, इच्छा। पाहरु=पहरेदार, जमादार।

यह शरीर ही सराय है, और मन पहरेदार है, उसमें कामना यात्री के समान आकर बसी है। सब को ठोक बजाकर देख लिया है कि कोई किसी का नहीं है।

अपने पहरै जागिये—अपने पहरे में—अपनी बारी में—जागते रहो, पड कर सोये न रहो। न जाने एक क्षण मे किसका पहरा हो जाय।

कुल खोये कुल ऊबरै—अकुल=कुल रहित, परिवार-विहीन अर्थात् परमेश्वर। बिलाय=नष्ट होना।

कुल खोने पर (कुल से सम्बन्ध तोड कर परमात्मा का भक्त बन जाने से) कुल का उद्धार हो जाता है, और कुल रखने पर (कुल के सम्बन्ध में लगे रहने से) कुल चला जाता है। यदि कुल हीन (परमात्मा) के नाम को मिटा दिया तो सब कुल नष्ट हो गया। परमात्मा का नाम भूल जाने से सारा कुल का कुल नष्ट हो जाता है।

कबीर बेडा जरजरा—जरजरा=जर्जर, टूटा-फूटा। हरुए=हलके। सरना=खिसकना, निकल जाना।

कबीर दास कहते हैं कि इस संसार-रूपी समुद्रको पार करने

का बेडा टूटा-फूटा है। इसमें हज़ारों छेद हैं, इसमें से हलके-हलके तो निकल गये हैं, और जिनके सिर पर (पापों का, मायाबँधन का) भार था वे डूब गये।

मैं भँवरा—हे भौंरे! मैं तुझे मना कर रहा हूँ कि वन-वन मे सुगध न ले। अगर किसी बेल में अटक जायगा, तो वहीं तड़प तपड कर तुझे जान देनी पडेगी—अर्थात् हे मनुष्य! विषय-वासना मे न फँस, इससे दूर रह।

बीडी के बीच—फुलवारी मे भौंरा कलियों की सुगन्ध लेता फिरता था पर अन्त में वह वाटिका की आशा छोडकर उड गया। भाव यह है कि मनुष्य विषयो मे कितना ही फँसे उससे उसकी तृप्ति नहीं हो सकती, अन्त में निराश ही होना पडता है।

भय बिनु भाव न ऊपजे—भय=डर। भाव=आदर, प्रेम। रस-रीति=प्रेम का व्यवहार।

डर के विना न आदर उत्पन्न होता है, और न प्रेम ही पैदा होता है। जब हृदय से डर चला जाता है तो सब प्रेम का व्यवहार मिट जाता है।

यह जग कोठी—यह ससार काठ की कोठी के समान है इसमे चारों ओर आग लगी हुई है। जो इसके भीतर रहे हैं, वे जल मरे हैं, और साधु भाग कर उद्धार पा सके हैं। साधु ससार से अलग रहते हैं अब वे ही उद्धार पा सकते हैं।

यह बिरिया तो फिर—बिरिया=समय, वक्त।

मन में विचार कर देख कि यह समय फिर नहीं मिलेगा, तू इस ससार में लाभ के लिए आया है इसलिये जन्म-रूपी जुआ मत हार।

शब्द का अंग

सीखे सुने विचारि—लाहा=लाभ।

जो (गुरु के) शब्द को सीखकर, सुनकर और विचार कर लेता है, उसे शब्द सुख देता है, जो बिना समझे बूझे, लेता है उसे कुछ लाभ नहीं होता है।

सब्दहि मारे मरि—शब्द के मारने से मर गये, शब्द के कारण ही राजपाट छोडना पडा, जिन्होंने शब्द को (गुरु के शब्द को) पहचान लिया, उनका काम सफल हो गया है।

सब्द हमार हम सब्द—शब्द हमारा है, हम शब्द के हैं, और शब्द ब्रह्म के कूप के समान रहस्यमय है। अत यदि तुम प्रभु के दीदार (दर्शन) को चाहते हो तो शब्द के रूप को पहचानो।

काल फिरै सिर—जीव के सिर पर काल फिरता रहता है, परन्तु नज़र नहीं आता। कबीरदास कहते हैं कि गुरु के शब्द को ग्रहण कर (मानकर) ही जीव यमराज से बच जाता है।

शब्द बराबर धन—शब्द के बराबर कोई धन नहीं यदि उसके मोल को कोई पहचानता हो। हीरा तो दामों से मोल मिलता है, पर शब्द का मोल और तोल नहीं होता।

शीतल शब्द उचारिये—मुख से शीतल शब्द बोलिए और मन में (अहंभाव) न लाइये, क्योंकि तेरा प्रीतम और तेरा शत्रु तुझ मे ही है— अर्थात् सरलता से शीतल वाणी

फूटी आँखि—(ससार की) विवेक की आँख फूट गई है, वह सत और असत की—साधु और ढोंगी की—पहचान नहीं करता। जिसके सग दस-बीस आदमी इकट्ठे हुए हैं, उसी को लोग महन्त कहने लगते हैं।

साधू भेरे—अपने अपने स्थान पर सभी साधु बड़े हैं, परन्तु जो ज्ञानी शब्द को परखने वाला है, वह सबका सिरमौर (सिरताज) है।

कहै कबीर—कबीरदास पुकार-पुकार कर कहते हैं कि विवेकी साधु कोई कोई ही होता है। जिसमें शब्द का ज्ञान हो—जो शब्द को पहचानता है—वह छत्र का धनी है, सबसे श्रेष्ठ है।

जीव जन्तु—जो जीव जन्तु जलाशय में रहते हैं, विवेकशून्य होने पर वे भी कहते हैं कि हम भी तारों के समान हैं। भाव यह है कि अज्ञानी मनुष्य अपने को बहुत बडा समझने लगता है।

निष्कर्ष

रहना नहीं—बिराना=पराया, दूसरे का। वाडी=वाटिका, फुलवारी।

हे मनुष्यो, इस ससार मे सदा नहीं रहना, यह तो पराया देश है। यह ससार कागज़ की पुडिया के समान है जो कि एक बूद के पडने से ही घुल जायगा (नष्ट हो जायगा)। यह ससार तो काँटों की फुलवारी है, जिस में उलझ-कर—जिसके विषय-वासना-रूपी काँटों मे फँस कर—मर जाना

है। यह ससार तो झाड़ और झाखड़ है, जो कि आग लगने से—एक चिनगारी के लगने से ही जल जायगा। कबीरदास कहते हैं कि इस ससार में केवल सतगुरु का नाम ही असली स्थान—एक मात्र आसरा—है।

घूघट का पट —घू घट का पट=अज्ञान (माया) का परदा। पचरङ्ग=पाँच रङ्ग का—पाँच भूतों का बना हुआ। चोल=वेश, शरीर। सुन्न=शून्य, एकान्त। अनहद=हृदय की भीतरी आवाज जो योग-साधन के समय सुनाई देती है।

हे जीव! तू अपने अज्ञान (माया के परदे) को दूर कर दे, तुझे प्रिय (परमात्मा) मिलेंगे। वह साँई घट-घट मे (सर्वत्र) रम रहा है, अत कड़ुवा वचन मत बोल। धन और अपने यौवन का गर्व मत कर, यह पाँच रङ्ग का चोला (पाँच भूतों का बना शरीर) झूठा है—नश्वर है। शून्य (एकात, हृदय मदिर) में ज्योति जगा ले, और योगासन से विचलित मत हो। इस योग की युक्ति (साधन) से रङ्गमहल मे अनमोल प्रियतम (परमात्मा) को पा लिया है। (प्रिय के मिलने पर आनद होता है और ढोल बजते हैं) कबीरदास कहते हैं कि अब आनद हो गया है और हृदय के भीतरी ढोल बज रहे हैं—हृत्तत्री की आवाज सुनाई दे रही है।

नाम अमल उतरै—अमल=नशा। सवाई=सवाया, अधिक। सुरत=ध्यान, याद, सुध। गनिका=वेश्या।

हे भाई नाम का (हरिभजन का) नशा नहीं उतरता और सब (भाग अफीम आदि के) नशे छाया छाया मे चढते और उतरते हैं, परतु (भक्तों का) नाम का नशा चढता है, (हरिकीर्तन) सुनने से यह हृदय मे लगता है। और स्मरण (हरि-ध्यान) करने पर यह

सूरदास

बाललीला

घुटुरुन चलत—मनिआँगन=मणि जटित आँगन। किलकिलात=हँसते हैं। हेरत=देखते। पेखत=निहारते हैं। लटकन=कलगी या सिर में लगे हुए रत्नों का गुच्छा जो नीचे की ओर झुका हुआ हिलता रहता है। ललित=सुंदर। भाल=मस्तक। भ्रुव भौंह। घुटुरुवनि=घुटुनों के बल इत=इधर। उत=उधर। दम्पति=पति-पत्नी (नंद यशोदा) होड=प्रतिस्पर्द्धा चढा-चढी।

मणि जटित आँगन में श्रीकृष्ण घुटुनों के बल चल रहे हैं। (उनके) माता-पिता, नंद और यशोदा उनका चलना देखते हैं। श्रीकृष्ण कभी उनकी तरफ देख कर हँसते हैं और कभी माँ यशोदा के मुख की ओर निहारने लगते हैं। (बालक कृष्ण के) सुंदर माथे के ऊपर लटकन झूल रहा है तथा काजल की टिकी भौहों के ऊपर लगी है। आँखों से देखने वाले को इस सुंदरता की तीनों लोकों में समानता करने वाली (कोईवस्तु) नहीं मिलेगी—उनकी सुंदरता अनुपमेय है। कभी वे घुटनों के बल दौड कर खडे होते हैं, कभी गिरते हैं, फिर उठते और दौडते हैं। इधर से नंद बुला लेते हैं, तो उधर से यशोदा बुलाती हैं। मालूम पडता है, उन पति-पत्नी में (कृष्ण को अपने पास बुलाने में) प्रतिस्पर्द्धा होरही है, इस तरह कृष्ण को उन्होंने कभी इधर कभी उधर जाने वाला खिलौना बना लिया है, (और वे उससे खेल रहे हैं।) 'सूरदास जी' कहते

हैं कि उन दोनो पति-पत्नी ने सनातन ब्रह्म के अवतार भगवान् कृष्ण को अपना बालक मान लिया है।

यहाँ लगि बरनो—सुन्दरताई=सुन्दरता । कनक-आँगन=सुवर्ण मडित आँगन। कुलहि=टोपी। लसत=शोभा पाती है। सुभग=सुन्दर। बहु विधि=बहुत तरह के । मघवा = इन्द्र। धनुप=इन्द्र-धनुप । सुदेश=सुदर। मृदु = स्निग्ध, कोमल। चिकुर=बाल। मनमोहन=कृष्ण । बगराइ=फैले । मजुल=सुदर। प्रगट=खिले हुए । कज=कमल । अलि अवली=भौंरो का समूह। शनि=शनिश्चर ग्रह। गुरु असुर=शुक्र तारा। देवगुरु=बृहस्पति तारा। भौम=मगल। द्युति=शोभा, काति। दुरत=छिपती। विज्जु छटाइ=बिजली की चमक । खण्डित वचन=तुतली बातें। पूरन=पूरा। अलप=थोडा । जलपाइ=कही हुई। रेणु=धूल।

उस सुन्दरता का कहाँ तक वर्णन करूँ, (नन्दके कुमार) कृष्ण सोने के आँगन मे खेलते फिरते हैं, उन्हें देख कर नेत्र उनकी छवि से भर जाते हैं। उनके सिर पर बहुत तरह के रगों की सुन्दर टोपी है वह ऐसी प्रतीत होती है मानो नवीन मेघ के ऊपर इन्द्रधनुप शोभा पा रहा हो। (इसके अलावा) मनमोहन कृष्ण के मुँह पर लहराते हुए चिकने-कोमल केश बडे सुहावने लगते हैं। (ऐसा मालूम होता है) मानों सुन्दर खिले हुए कमल के फूल के ऊपर भौंरों का समूह फिर रहा हो। नीलम, पुखराज और पन्नों आदि से जडा हुआ लटकन जो उनके मस्तक पर हिल रहा है, वह मानों मस्तकरूपी आकाश में शनिश्चर शुक्र, बृहस्पति और मगल का समुदाय इकट्ठा हुआ हो। (शनि का रग काला, शुक का सफेद, बृहस्पति का पीला और

नकेल डालना, बल-पूर्वक वश में करना। सुरत=याद। शंखसुर=(शंखासुर) एक राक्षस। लुकाऊ=छिपा। मीन रूप=मत्स्यावतार। असुरन=दैत्यों के। मन्दर=(मन्दराचल) पर्वत विशेष। रसाऊ=डाला। कमठरूप=कच्छपावतार। सुरराऊ=इन्द्र। हरणाच्छ=(हिरण्याक्ष) एक दैत्य का नाम। गरवाऊ=गर्व। वाराहरूप=शूकरावतार। छिति=पृथ्वी। दन्त अगाऊ=दाँत के अग्रभाग पर। विदारेउ=मारा। परग=पैर, डग। वसुधाऊ=पृथ्वी भी। श्रम जल=श्रम के कारण पैर से निकला हुआ जल, जो गगाजल हो गया। दरशि=दर्शन। परसाऊ=स्पर्श। मुनि=जमदग्नि ऋषि। निछत्रि=क्षत्रिय विहीन। छिति=क्षिति, पृथिवी। छार=राख। मिस=बहाने। वदन=मुख। बिकास्यो=खोला। नृपति=जरासन्ध से तात्पर्य है। निगम=वेद।

माता यशोदा ने कृष्ण को डराने के उद्देश्य से कहा—मेरे लाल, तुम दूर खेलने मत जाना, (सुना है) हौवा आया हुआ है। तब कृष्ण (बिल्कुल बालक की सी स्वाभाविकता से) हँसकर पूछते हैं कि अरी माँ उन्हें किसने भेजा है? इस पर बलराम हँसते हँसते बोले, कि अब ये बातें (हौवे सम्बन्धी) सुन-सुनकर तो तुम भय का भाव दिखा रहे हो लेकिन जमुना के उस किनारे पर जहाँ झाऊ के सघन जगल हैं, गौएँ चराते हुए जब तुमने पाताल में घुसकर कालीनाग* को नकेल डाली थी, तब वहाँ तुम्हें

*गोकुल के पास कालीदह नामक तालाब में एक भयानक विषैला नाग रहता था। उसके विष के प्रभाव से उस तालाब का सारा जल विषैला हो गया था। एक बार खेलते-खेलते कृष्ण की गेंद उस तालाब में गिर पड़ी। गेंद लेने के लिए कृष्ण जल में कूद पड़े। कालीनाग यह देख उनपर झपटा पर कृष्ण उसके फण पर चढ़कर खूब नाचे। अन्त में काली नाग को उनकी वशता स्वीकार करनी पड़ी।

हौवे का डर नहीं हुआ ? उस दिन की भी याद भूल गये हो जब सप्तरसातल के नीचे तुमने (निर्भय) शेषनाग की शैया बनाई थी*, जब शखासुर † चारों वेदों को ले जाकर जल में छिप रहा था और जब मत्स्यावतार धारण कर तुमने उस को मारा था तब यह हौवा कहाँ था ? देवता और दैत्यों के लिए, समुद्र मथते समय मन्दराचल पर्वत को समुद्र में डालने पर तुमने कच्छपावतार ‡ धारण कर उसे अपनी पीठ पर धारण किया था, जिससे इन्द्र को भी आनद हुआ था। जब मन में अत्यत घमड करके हिरण्याक्ष ने युद्ध की इच्छा की थी, तब तुमने

*पुराणों के अनुसार प्रलयकाल में विष्णु भगवान् तीनों लोकों को अपने पेट में धारणकर शेषनाग की शय्या बनाकर उस पर सोये थे। कुछ काल के उपरान्त उनकी नाभि से एक कमल हुआ, जिस पर ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, फिर सृष्टि क्रम चला।

†एक दैत्य जो ब्रह्मा के पास से वेद चुराकर समुद्र के गर्भ में जा छिपा था। इसी को मारने के लिए भगवान् ने मत्स्यावतार धारण किया था।

‡एक बार देवता और दैत्य अमृत निकालने के लिए समुद्र मथने को एकत्र हुए। मदराचल पर्वत की मथानी और वासुकी सर्प की रस्सी बनाई गई। अगाध समुद्र में पर्वत धँसने लगा। ठहरे तो किस पर ? बड़ी कठिनता हुई। देवताओं के स्तुति करने पर विष्णु भगवान् ने कच्छप रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर रख लिया और इस तरह समुद्र-मंथन बड़ी सुगमता से हो सका। यही कच्छप-अवतार का रहस्य है।

राजा जरासन्ध और भीमसे जब परस्पर युद्ध हो रहा था तब तुम्हीं ने उस भाव का संकेत किया था जिससे (भीम ने) तुरन्त (जरासन्ध को) चीर कर उसके दो टुकडे कर दिये थे। ऐ तीनों लोक के स्वामी, तुम्हारी तो इस प्रकार की महिमा है ! तुमने तो भक्तों के लिए अवतार धारण किया है, और (यह निश्चय है कि) समस्त राक्षसों को मारकर वहा दोगे या समस्त राक्षसों का भार भूतल पर से वहा दोगे। सूरदास के प्रभु (आप) की यह लीला ऐसी (रहस्यमयी और विविधतापूर्ण) है कि वेद भी उसके विषय मे 'नेति नेति' ही कहते हैं।

गोवर्धन लीला

प्रथमहिं देऊँ—गिरहिं=गोवर्धन पर्वत को। वज्रघातनि=वज्र की मार से। चूरण=चूर्ण। बिलाय=लुप्त। घोइ डारौं=बहा दूँ। उपाधि=उपद्रव, उत्पात। कोप=क्रोध। सोउ=वह भी। सुरपति=इन्द्र। मघवा=इन्द्र। वेगी=शीघ्र। भहराय परौ=टूट पडो, बरस पडो।

(अपनी पूजा लुप्त होते देखकर इन्द्र कुपित होकर कहता है) पहले मैं इस (गोवर्धन) पर्वत को ही बहा दूँगा। वज्र की मार से उसको चूर्ण करके पृथ्वी पर से उसका अस्तित्व ही मिटा दूँगा। इन (ब्रजवासियों) ने मेरी महिमा नहीं समझी, उसे इन्हें प्रगट करके दिखा दूँगा। जलवृष्टि करके व्रजभूमि और ब्रजवासी दोनों को बहा दूँगा। (मेरी ही कृपा से) ये अब तक आनन्द-पूर्वक खाते खेलते रहे हैं, और अब मेरे ही साथ उपद्रव खडा कर दिया है, वर्ष दिन पर मुझे पूजा देते थे, उसका भी इन्होंने अब लोप कर दिया है। कवि कहता है, कि इस प्रकार कुपित होकर इन्द्र ने बलवान मेघों को बुला लिया और फिर क्रोध के साथ इन्द्र उनको

लगे कि व्रज पर आक्रमण करो और जल्दी वहाँ जाकर उस पर बरस पडो।

बरषि बरषि सब—कैहैं=कहेंगे । कादर=कायर । गिरिवरधर= गोवर्धन धारण करने वाले, कृष्ण।

सब बादल बरस-बरस कर हार गये। (कवि कहता है, तब वे आपस मे इस प्रकार परामर्श करने लगे)—इन्द्र ने हमें आदरपूर्वक कहा था कि व्रजवासियों को वर्षा द्वारा बहा दो। अब हम लोग चलकर स्वामी को क्या जवाब देंगे ? यह सुनकर (कि हम व्रज को बहा न सके) स्वामी हमारा निरादर करेंगे। हम इधर वर्षा करते हैं, उधर बरसते ही जल सूख जाता है और व्रजवासी सब सकुशल हैं। फिर गुस्सा करते हुए और प्रलय जल की वर्षा करते हुए वे कायर सब यही कहते हैं कि (उनमे वर्षा द्वारा व्रजवासियो का सामना करने की शक्ति नहीं है कारण कि) व्रजनागर गिरिधारी कृष्ण ने सब गायो और बछडों (तक) की रक्षा करली है।

वृन्दावन प्रवेश शोभा

मैया हौं न चरैहौं—हौं=मैं। भिगरे=सारे। पाँइ=पैर। पिराय=दर्द करते हैं। पत्याहि=विश्वास करती है। रिसाय= क्रुद्ध हो कर। पठवति=भेजती हूँ। लरिका=लडके को। रिंगाई=दौडा दौडा कर।

कृष्ण माता यशोदा से शिकायत करते हुए कहते हैं—मैया! अब मैं गायें नहीं चराऊँगा। सब ग्वाले मेरे से गायें हँकवाते हैं और मेरे पाँव पीडा करने लगते हैं। जो तुम मेरे पर विश्वास नहीं करतीं तो बलराम से अपनी कसम दिलाकर पूछ लो। यह सुन-सुन कर यशोदा क्रुद्ध होकर ग्वालो को गालियाँ देती है और कहती है कि मैं अपने लडके को उन के संग इस लिए भेजती हूँ कि वह

हम—दोनों भाई चार-पाँच दिन में लौट आवेंगे, आप सकुशल रहिये। तब तक आप समय समय पर मेरी मुरली, वशी, विषाण, आदि की रखवाली करते रहिये, ऐसा न हो कि मेरा कोई खिलौना राधिका चुरा ले जाय। जिस दिन से हम तुमसे बिछुडे हैं उस दिन से हमें कोई कन्हैयाँ नहीं कहता अर्थात् कोई दुलार से नहीं बुलाता। न प्रात काल कभी ठीक तरह से कलेऊ ही किया है और न शाम को कभी ताजे दूध की झाग (ताजे दूध की धार) ही पी है। वे कहते हैं, कि हे माँ! मैंने जितने दु ख उठाये हैं उनका क्या वर्णन करूँ कुछ कहते नहीं बनता। अब सुनते हैं कि वसुदेव और देवकी हमें अपना पुत्र कहते हैं। बाबा नद से जाकर कहना कि उन्होंने तो अपना मन एक दम निठुर बना लिया है, वे जब से हमें मथुरा छोड गये हैं तब से उन्होंने फिर हमारी कुछ खोज-खबर नहीं ली।

मेरे कान्ह—बेर=बार। बहुरि=फिर। लालसा=कामना। अठान=अकरणीय कार्य, न करने योग्य काम। जोरी=जोडी। ऊतर=जबाब, उत्तर। सूतर=सुत्र, सम्बध।

कमल की पंखुडी के समान आँखों वाले मेरे कृष्ण, इस बार फिर ब्रज आओ। न मालूम तुम मन में क्या विचार करने लगे हो? मेरी केवल यही कामना शेष है कि मैं बैठ कर तुम्हें देखती भर रहूँ। कभी भूलकर भी तुमसे न कहूँगी कि तुम गाये चरा आओ। तुम्हारे जो जी में आये करना, मैं तुम्हें अयोग्य काम और मक्खन की चोरी करने पर भी कभी न रोकूँगी। मैं तो अपने जीते जी (एक बार फिर) हीरों की सी, बलराम और कृष्ण की जोडी को आँख भर कर देखना चाहती हूँ। बस एक बार यहाँ तक आकर मिल जाओ इसके ... और मैं 'क्या जवाब दूँ—क्या सदेश कहूँ?

मेहमानी के ही सम्बन्ध-सूत्र से चार दिन के लिए आकर मुझे सुखी कर जाओ।

अब नन्द गइया—गइयाँ=गायें। आन=आकर। परगट=जन्म लिया। दिन चार=कुछ समय तक। प्रतिपार=(प्रतिपाल) पूरा करके।

हे नन्द, अब आप अपनी गायें सँभाल लीजिये। (तुमने जो किया था उसी को पूरा करने के लिये) मैंने तो तुम्हारे यहाँ जन्म लिया, और कुछ दिनों तक तुम्हारी गाय चरायीं और तुमने जो मेरा कुछ दिन तक पालन पोषण किया सो हमने उसके बदले कुछ दूध-दही सब चुराकर खाया। कवि कहता है, इस प्रकार सूरदास के स्वामी, कृष्ण, कपट रूपी-कागज फाड़ कर (और सम्बन्ध छिन्न-भिन्न करके) ब्रज को छोड़ कर चल दिये।

१३ पाछेहि चितवत—पाइ=पग। अम्बर=वस्त्र। रेणु=धूल। सजनि=सखि। माधुरी=सुन्दर। रथांग=रथ के पहिये। पताका=ध्वजा।

'मेरी आँखें पीछे की ओर ही देखती हैं, और पैर भी (ब्रज की ओर) आगे नहीं पड़ते। मेरा मन तो उस मधुर मूर्ति ने (लावण्य-प्रतिमा ने) हर लिया है अब ब्रज में आकर क्या करूँगी? मैं न हवा ही बन पायी न और आकर ही बन सकी, न उनके रथ की ध्वजा ही हुई और न रथ का पहिया ही बनी। मार्ग की धूल भी न हुई जो उनके चरण से लिपटती हुई मथुरा तक तो उनके साथ जाती। हे सखी, अब किस प्रकार क्या उपाय किया जाय कि गोपाल कभी फिर आकर मिल सकें। कवि कहता

यह (योग) सिद्धान्त तो जाकर उन्हें ही सिखलाओ जिनको यह पसन्द हो। पुतलियों को आज तक काच के दानो की माला गूँथते न कभी सुना है, न देखा है, ऐसे ही हम योग साधन नहीं कर सकतीं।

ऊधो जो हमहिं—नेम = नियम । गूँदे = गुहे, गूँथे। भसम = राख।

ऐ ऊधो जी, हम लोगों को आप योग न सिखायें। हमें तो वही उपदेश दें और वैसे ही उपवास-नियम आदि बताएँ जिनसे कृष्ण मिल सकें। मुक्ति अपने घर बैठी रहे, हमें उसकी परवाह नहीं। निर्गुण की तो चर्चा चलाते हमें दुःख होता है। (तुम्हीं बताओ) जिस सिर के बालों को फूलों से भर-भर करके गूँथा था उन पर अब राख कैसे मल सकेंगी ! (खोज करने से) अपने आप में ही (निगुण रूप) दृष्टिगोचर होंगे, यह सुन कर तो हम सब आनन्दित हो ली हैं, लेकिन यह बताओ कि नवनिधि भगवान् क्या फिर कभी ब्रज में आयेंगे ? "सूरदास प्रभु सुनहु न वा विधि" का अर्थ अस्पष्ट है। वियोगी हरि द्वारा सम्पादित "संक्षिप्त सूरसागर" में इसकी जगह "सूरदास प्रभु सुनहु नवोनिधि" पाठ है। इसी पाठ को ठीक मान कर हमने यह अर्थ किया है।

विनय पत्रिका

काहू के कुल—कुल = वंश । अविगत = ईश्वर, जो जाना न जा सके। ब्योहारत = प्रेम का) व्यवहार करते है। तुष्टि = तृप्त होकर। ओछे = नीच। अनत = अन्त में।

भगवान् की भक्तवत्सलता का मैं कैसे बखान करूँ, वे तो सभी पापियों का उद्धार करते हैं, किसी के (ऊँच-नीच) कुल की परवाह नहीं करते। विदुर को ही लीजिये, उनकी जाति और उनका पेशा क्या था, जिनके साथ उन्होंने प्रेम का व्यवहार किया। राजा के सम्मान (दुर्योधन ने भी कृष्णा को बुलाया था) और अपने पद (अपनी मान मर्यादा) की परवाह न कर खूब तृप्तिपूर्वक उनके घर भोजन किया। जो जन्म और कर्म दोनों के विचार से नीच हैं और जो नीच ही कह कर पुकारे जाते हैं उन भक्तों के लिए तो अन्त मे सूर के स्वामी की ही सहायता काम आती है।

गोविन्द प्रीति—भाय=भाव। अन्तर=हृदय। कटु=खट्टे। भिलनी=शवरी, भीलनी। भच्छ=खाना। सदभाय=स्वाद से। सन्तत=निरन्तर, सदा। मीत=मित्र। फदली=केला। छिलरा=छिलका। शाक के पत्र=शाक के पत्तों से। अघाये=सन्तुष्ट हुए। ऋषि=दुर्वासा से तात्पर्य है।

भगवान् सब के प्रेम को मान देते हैं। जो भक्त जिस भाव से सेवा कर रहा है उसके हृदय के उस भाव का उन्हें पता है। शवरी ने बेरों को चख कर खट्टे-खट्टे निकाल कर मीठे-मीठे लाकर उन्हे दिये थे, लेकिन उन्होंने बेरों के जूठे होने की कुछ परवाह न की थी बल्कि उन्हें खूब स्वाद से लेकर खाया था। सदा मे ही भक्त और मित्रों के हितैषी भगवान् जब विदुर के घर गये तो भक्ति से गद्गद विदुर द्वारा दिये गये केले के छिलकों को खाने में ने सकोच न किया। कौरवा के

भटकता रहा। सुधि नहिं काल=न जाने कितना समय बीत गया। अविद्या=अज्ञान।

हे भगवान मैं काम और क्रोध का चोला पहनकर और गले में आसक्ति (विषय-वासना) की माला डालकर बहुत नाच चुका। मोह के घुंघरू बजते रहे, और निंदा की मधुर झनकार निकलती रही। भ्रम में पड़ा हुआ मेरा मन मृदङ्ग बन गया लेकिन भय के कारण बेसुरा रह गया (श्री वियोगी हरि, श्रीभगवान दीन तथा श्री मिश्रबधु आदि विद्वानों द्वारा सम्पादित सूरदास के ग्रंथों में "डरप असङ्गत चाल" के स्थान पर "चलत कुसङ्गति चाल" पाठ है, जिसका अर्थ है कि भ्रम में पडा मनरूपी मृदङ्ग कुसङ्गति की राह पर चलता है) इस शरीर के भीतर तृष्णारूपी ध्वनि विविध प्रकार के ताल देने लगी। मैंने माया का कमरबंद बाँध लिया, और माथे पर लोभ का तिलक लगा लिया, तथा भेष बदल बदल कर कितने समय तक (जिसका अब पता नहीं) जल थल में सर्वत्र अनेक स्वाँग किये अर्थात् अनेक जन्म-जन्मांतरों में भटकता रहा। सूरदास के उस अज्ञान को अब हे भगवान्, आप दूर करें अर्थात् उसे सांसारिक जन्म-मरण के बंधन से मुक्त कर दें। मूल में "काम क्रोध को परिहरि चोलना" है, उसकी जगह 'काम क्रोध को पहरि चोलना" चाहिये, नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है, और छंद भी टूटता है।

कृपा अब कीजिये—बलिजाऊँ=बलाएँ लूँ। पदअंबुज=चरण-कमल। अशुची=अपवित्र। अकृती=अकर्मी। अपराधी=पापी। अधम उधारन=पापियों की रक्षा करने वाले। काके=

किसके । सुहाउँ=अच्छा लगूँ। विरद=यश । कलुपी=पापी । सेंत्यौं=मुफ़्त ।

भगवान् मैं आपकी शरण लेता हूँ, अब मेरे ऊपर दया कीजिये आपके चरण-कमलों के बिना अब मुझे और कहीं स्थान नहीं है। मैं अपवित्र, अकर्मी और पापी हूँ इससे आपके सामने आते मुझे लज्जा लगती है। लेकिन हे केशव, आपतो दयालु हैं और करुणा के सागर हैं। आप पापियो का उद्धार करने वाले कहे जाते हैं। (आपको छोड कर) किसके दरवाज़े पर जाकर खडा होऊँ और मैं देखने में किसे अच्छा लगता हूँ ? मैं तो कुटिल हूँ और कामी स्वभाव वाला हूँ, पर आपका यश फैला हुआ है कि आप अशरण-शरण हैं अर्थात् उसको आश्रय देते हैं जिसे कोई नहीं पूछता। मैं तो अत्यन्त पापी, काला और दुर्जन हूँ, मुफ्त भी कोई मुझे नहीं पूछेगा। (मुझे बताइये) आपके पारस जैसे, पापियों को पवित्र करने वाले, चरण-कमलों का किस प्रकार स्पर्श प्राप्त करूँ ?

नाथ जू अबके—उबारो=उद्धार करो। पासग=तराज़ू के पलडों का फ़र्क। भमन=(भवन) घरो। गारों=गर्व। निस्तारो=उद्धार करो।

हे स्वामी, तुम्हारा नाम पतितपावन है, और मैं पतितों (पापियों) मे मशहूर पतित हूँ। अबकी बार (ज़रा) मेरा उद्धार तो कीजिये। अजामिल की क्या हस्ती थी, जिसका मैं विचार करूँ, बडे से बडे पापी तो मेरे पासग के बराबर भी नहीं हो सकते। नरक मेरा नाम सुनते ही भागता है, (मेरे डर के कारण) वहाँ भवनों मे ताले डाल दिये गये हैं। (अर्थात् मुझे नरक में भी स्थान मिलना कठिन है)। हे भगवान, तुमने अब तक छोटे-मोटे

ऐ स्वामी, मेरे समान दूसरा और कोई पापी नहीं है। मैंने अब तक बहुत प्रयत्न किया लेकिन मैं अपने अवगुणों को नहीं छोड सका। जिस प्रकार बंदर घुंघची (रत्ती) को आग समझ कर, सरदी से बचने के लिए, छूता है लेकिन वह उसे कितनी ही पास क्यों न रक्खे उसकी सरदी नहीं जाती उसी प्रकार मैं भी जन्म-जन्मातर में अज्ञानवश कुछ को कुछ समझता रहा (सांसारिक भोग-विलास से सुख पाने की आशा करता रहा और तत्त्व बोध से वञ्चित रहा)। मैं उसी तरह धन-वैभव और स्त्री में लुभाया हुआ रहा जैसे बच्चा जल में परछाईं देख कर भूला रहता है। मछली की तरह मैं जीभ के स्वाद में भूला रहा और जाल को नहीं देख सका (इस असार समार में) मैं उसी प्रकार सुख मानता रहा जैसे मनुष्य सपने में किसी दूसरे की सम्पत्ति हाथ मे आ जाने पर प्रसन्न होता है, लेकिन जाग पडने पर उस में से कुछ हाथ नहीं लगता, सूरदास कहते हैं कि यह ऐसी ही महिमा है।

प्रीतम जानि केहु—प्रीतम=प्यारे। नेरे=समीप। हस=जीवात्मा। प्रेत=भूत। निधि=तरीका। नाहक=व्यर्थ। गँवायो=बिताया।

ऐ प्रिय, मन मे समझ लो कि सारी दुनियाँ अपने सुख के कारण बधी है (दुनियाँ के सारे सम्बन्ध अपने सुख के कारण हैं) वास्तव में कोई किसी का नहीं है। सुख के समय (समय अनुकूल होने पर) सब लोग पास आकर बैठते और चारों तरफ से घेरे रहते हैं। पर दुख पडने पर सब साथ छोड़

देते हैं, कोई पास नहीं फटकता। अपनी स्त्री जिस से बहुत प्यार होता है और जो हमेशा साथ लगी रहती है वह भी जब जीवात्मा इस शरीर को छोड देता है तब 'भूत-भूत' कह कर भागती है। दुनियाँ का सारा सम्बन्ध, इसी ढग का (झूठा) है और तू उन्हीं से प्रेम करता है। कवि कहता है, कि तूने ईश्वर के भजन के बिना व्यर्थ ही जिन्दगी बितादी।

अथ में जानो—सिरानी=मद पड गई। आन=और। आनै=और ही। हेरानी=खो गई। बिगनी=परायी। चेत ले=होश में आ जा। सारगपानी=विष्णु भगवान्।

अब मुझे पता चला कि मेरा शरीर बुड्ढा हो गया है। सिर से पैर तक कोई अङ्ग वश में नहीं रहा, शरीर की अच्छी हालत मद पड गई, शरीर की शक्ति मद पड गई। कहता कुछ हूँ और मुँह से निकलता कुछ और है, नाक और आँखों से पानी बहने लगा है। हर एक अङ्ग की चमक-दमक चली गई है और बुद्धि भी खो गई है। तन-मन का कुछ होश नहीं रहा। सूरदास कहते हैं, (जीव) अभी भी होश मे आजा और भगवान् विष्णु का भजन कर ले (नहीं तो अगले छण में) बात दूसरे के वश हो जायगी।

मैं छकड़ा लदाकर ले आऊँगा, (परन्तु तू यह नहीं जानती) जिनको विधाता ने टूटा सा छप्पर दिया है, वे ऊँचे चौबारे और कोठे कहाँ से पायेंगे। जो विधाता ने ही हमारे माथे में गरीबी लिखी है, तो हे मूर्ख स्त्री! किसी के मिटाने से वह दरिद्रता दूर न होगी।

फाटे पट टूटी—पट=कपड़े। विमुख=प्रतिकूल। पित्रई=पितर भी। अगत्रई=पहले से ही। विचित्रई=विचित्रता।

(सुदामा की स्त्री बोली) कपड़े फट गये हैं, छप्पर टूट गया है और भीख माँग कर खाते हो, बिना गये (बिना रुपये लाये और यज्ञ किये) देवता और पितर लोग भी विमुख रहते हैं। वे कृष्ण दीनबन्धु हैं, तुम्हें दुःखी देख कर कृपा करेंगे, और कुछ अच्छा सा (खूब) देंगे, यह मैं पहले से ही जानती हूँ। द्वारका तक जाने में हे प्यारे! तुम कितना आलस करते हो और काहे को लज्जा करते हो, कौन सी ऐसी विचित्रता हो गई है॥ यदि जन्म भर इसी प्रकार दारिद्रय ने सताए रक्खा तो फिर कृपानिधि भगवान की मित्रता किस काम आयेगी।

तैं तो कही—नीकी=भली। प्रीति सरसाइये=मेल-मिलाप बढ़ाना चाहिये। जेंइये=खायें, भोजन करें। जिमाइये=भोजन करवाइये। जोरि=इकट्ठा कर के। भूप=राजा।

(सुदामा बोले) हे प्यारी! तूने तो खूब ठीक कहा है, परन्तु यह भले की बात भी सुन कि मित्रता की यह रीति है कि नित्य ही प्रीति (मेल-मिलाप-मुहब्बत) बढ़ाया जाय। यदि आपस में दोनोंका दिल मिल आय, अर्थात् मित्रता हो जाय, तो दोनों के पास धन भी होना चाहिये, क्यों कि यदि मित्र के यहाँ खाया जाय, तो आप भी उसे खिलाना चाहिये। वे तो महाराज हैं, कई राजाओं के समूह को इकट्ठा करके बैठते हैं, अर्थात् उनके अधीन

के कई छोटे-मोटे राजा उनके पास बैठ रहते हैं, वहाँ पर इस शक्ल में जाकर क्यों व्यर्थ ही शर्मिन्दा होऊँ। दु ख-सुख सब दिन काटने ही पडेंगे, विपत्ति पडने पर भूलकर भी मित्र के यहाँ सहायता के लिए नहीं जाना चाहिये।

द्वारका जाहु जु द्वारका—गति=दशा। छड़िया=द्वारपाल, दरबान। नेरे=निकट। चामर=चावल।

(फिर सुदामा बोले) द्वारका जाओ, द्वारका जाओ, हे प्यारी! आठों पहर (दिनरात) तुझे यही सनक सवार रहती है। जो तेरा कहा न करूँगा, अर्थात् द्वारका न जाऊँगा तो तू बडा दु ख पावेगी परन्तु अपनी दशा देख कर सोचता हूँ कि मैं वहाँ कैसे पहुँचूँगा! वहाँ द्वारकाधीश के दरवाज़े पर तो चौकीदार खडे रहते हैं, और राजा लोग भी पास नहीं आने पाते। समझ कर देखो वहाँ जाने के लिए पान-सुपारी (जो राजाओं को भेंट की जाती है) तो चाहिये ही पर मेरे पास तो भेंट देने के लिए चार चावल भी नहीं हैं।

यह सुनि के—यह बात सुन कर (कि मेरे पास भेंट को चार चावल भी नहीं है) ब्राह्मणी (सुदामा की स्त्री) पडौसिन के पास गई, और बडी खुशी (हुलास) के साथ सवासेर चावल ले आई।

सिद्धि करौ गणपति—सिद्धि करो=(मु०) प्रस्थान करो। गणपति=गणेश। दुपटिया=छोटा सा दुपट्टा। खूँट=किनारा। वाली=अनाज के बाल। बूट=चने का पौधा।

(ब्राह्मणी सुदामा से बोली)

दुपट्टे के किनारे ये चावल बाँधकर और गणेश जी का स्मरण कर प्रस्थान करो। अनाज के बाल और चने के पौधे माँगते खाते उसी रास्ते से चले जाओ।

दृष्टिचकाचौध—सरस=बढकर। भौन=महल। साधि साधि मौन=मौन साधकर। धाय=दौडकर। गौन=गमन। बलवीर=बलराम के भाई कृष्ण।

सुदामा जब द्वारका पहुँचे तो उनकी नज़र सुवर्णमयी द्वारका को देख चुँधिया गई। वहाँ द्वारका में एक से एक बढकर (आलीशान) महल हैं। और, पूछे बिना कोई किसी से बात नहीं करता, सब देवताओं की तरह मौन साधकर बैठे हैं, अर्थात् चुपचाप अपने अपने कामों में लगे हैं। सुदामा को देखकर पुरवासियों ने दौडकर उनके पाँव पकड लिए, और उनसे पूछा कि हे ब्राह्मण देवता! कृपा करके बताइये कि आप किसके पास जा रहे हैं? (इस पर सुदामा जी बोले) भाई! बताओ कि अधीर आदमियों के धीरज—अनाथो के नाथ, और दूसरों की दर्द हरने वाले बलराम के भाई भगवान कृष्ण के यहाँ पर महल कौन से हैं।

द्वारपाक चलि—इसपर द्वारपाल वहाँ गया जहाँ यदुराज कृष्ण बैठे थे और हाथ जोडकर खडा हो गया और बोला —

शीश पगा न झगा—पगा=पगडी। झगा=झग्गा, कुरता। आहि=है। उपानह=जूता। सामा=सामान। चकि रह्यो=आश्चर्यचकित हो रहा है। अभिरामा=सुंदर।

सिर पर पगडी और बदन पर कुरता नहीं है, हे प्रभु न जाने कौन है, और किस गाँव में रहता है। उसकी धोती और दुपट्टा भी फटा हुआ है, तथा पैर में जूता तक नहीं है इस तरह

का एक दुर्बल ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है यहाँ के सुन्दर महल देख कर आश्चर्यचकित हो रहा है, और दीनदयाल का नाम पूछता है तथा अपना नाम सुदामा बतलाता है।

ऐसे बिहाल विवायन—बेहाल=दुखी। बिवायन=बिवाइयों से, पैर की ऐड़ी के फटने से। कंटक=कांटे। जोये=देखे।

(श्रीकृष्ण जी ने) सुदामा के पैर बिवाइयों से बेहाल तथा काँटों से भरे हुए देखे। उस पर वे उनसे बोले—हाय मित्र! तुमने तो बड़ा दुःख पाया है, यहाँ क्यों नहीं आये, इतने दिन तुमने कहाँ गँवा दिये ? इस तरह सुदामा की बुरी हालत देखकर बहुत अधिक दुःख करके अत्यन्त दयालु श्रीकृष्ण रो पड़े। (पैर धोने के लिए) उन्होंने परात के पानी को हाथ भी नहीं लगाया, अपनी आंखों के जल से ही सुदामा जी के पैर धो डाले।

तंदुल त्रिय—तंदुल=चावल। विभव=ऐश्वर्य।

स्त्री ने सुदामा को चावल दिये और कहा था कि ये जाकर प्रभु को भेंट कर देना। परन्तु सुदामा कृष्ण जी की राज-सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य को देखकर सकुचाते हैं, उन्हें दे नहीं सकते।

कछु भाभी—चाँप रहे=दबा रहे हो।

(कृष्ण जी बोले) हे सुदामा, जो कुछ भाभी ने हमारे लिये दिया है, वह तुम हमें क्यों नहीं देते और गठरी को बगल में कहो किस लिए दबा रहे हो ?

आगे चना—बानि=आदत। सुधारस=अमृत से सने हुए, बहुत मीठे। पाछिली=पिछली, (पहले की)। अजौं=अब तक

कृष्ण ने सुदामा से मुस्कराकर कहा, पहले गुरुमाता ने दिए थे,* वह तुमने खुद चबा लिए थे, और हमें नहीं दिये थे। तुम सचमुच चोरी करने में बड़े चतुर हो, इसलिए तुम अब गठरी को काँख में दबा रहे हो, और ये अमृत से सने (चावल) खोलते नहीं हो। हे सुदामा, तुमने अपनी पिछली आदत अब तक नहीं छोड़ी (जिस तरह तुम अकेले गुरु-माता के दिये हुए चने चबा गये थे) इसी तरह ये भाभी के चावल भी तुमने कर लिए हैं।

खोलत सकुचत—जीरण पट=(जीर्ण) पुराना कपड़ा। चितवत=देखते हुए।

कृष्ण जी की ओर देखते हुए सुदामा गठरी खोलते सकुचा रहे थे। पर इतने में पुराने कपड़े के फट जाने से चावल छूट गये, और उसी स्थान पर बिखर गये।

कह्यो विस्वकर्मा को—छबही=छवि के।

भगवान् कृष्ण ने विश्वकर्मा से कहा कि तुम अभी जल्दी ही जाकर सुदामा जी का शहर बनाओ। रत्नों से जड़े हुए द्रव्य धन और सोनेवाले सब कोन (महल) तथा बाज़ार और फूलोंके बाग

*एक बार उज्जयिनी में पढ़ते समय गुरुमाता ने सुदामा को कुछ चने दिए थे और कहा था—"लो, श्रीकृष्ण को साथ लेकर लकड़ी ले आओ और दोनों जने चने चबा लेना"। जब ये दोनों वन में गए तो बड़े जोर से पानी बरसने लगा। दोनों मित्र भटक कर अलग-अलग हो गए। सुदामा को भूख लगी, वे सब चना खा गए श्री कृष्ण के मिलने पर भी नहीं बताया कि हमें चने चबाने को दिए गए थे। यह बात उन्हें लौट आने पर मालूम हुई।

इसी समय बनादो। उनके दरवाजों पर कल्पवृक्ष, हाथी, सवार तथा प्यादे खड़े करदो तथा देवताओं की सी सुन्दरता वाले अपार दास-दासी बनादो। जहाँ पर इन्द्र, कुबेर आदि देवता तथा देवताओं की स्त्रियाँ और अप्सरा तथा गुणी गन्धर्व सबही खड़े रहें।

नित नित सब—प्रतिदिन प्रभु ने स्वयं सुदामा को सारी द्वारकापुरी तथा अनुराग-भरे बाग, जहा ज़रा भी कष्ट नहीं था दिखलाये।

परम कृपा दिन—कृपालु यदुराज ने प्रतिदिन अधिक ही कृपा की, और दूने आदर भाव से मित्र-भावना (मित्रता) को बढ़ाया।

देने हुतो सो—गोपाल कृष्ण जी ने सुदामा जी को जो कुछ देना था, वह पहले ही दे चुके थे, पर ब्राह्मण को वह बात न पता लगी और चलते समय सुदामा जी के हाथ में उन्होंने कुछ न दिया।

गोपुर लौं—गोपुर=शहर का फाटक।

शहर के फाटक तक सुदामा जी को पहुँचाकर सब दरबारी वापिस आ गये। मित्र से जुदा होने वाले कृष्ण की आँखों से आँसुओं के जल की धारा बह निकली।

बालापन के—(इधर सुदामा जी अपने मन में सोचते जाते थे कि देखो कृष्ण ने इतनी मित्रता दिखाई, पर चलते समय हमें कुछ नहीं दिया। खाली हाथ लौटा दिया) कृष्ण, तुम मेरे बचपन के मित्र थे, अत तुम्हें क्या शाप दूँ। अच्छा हे कृष्ण जैसा तुमने मुझे दिया, वैसा तुम स्वयं पाओगे। (कृष्ण वास्तव में सुदामा को बहुत कुछ दे चुके थे, अत यह शाप वर-स्वरूप ही हुआ)

४ राम न जाते—रहीम कहते हैं कि यदि भावी (होनहार) कहीं अपने हाथ मे होती तो न राम हरिण के साथ (पीछे) जाते और न सीता रावण के साथ जाती।

५ कहु रहीम कैसे—रहीम कहते हैं कि बेर और केले का साथ कैसे निभ सकता है, बेर तो अपने रस में मस्त होकर झूमते हैं, और केले के पत्ते काँटों से छिद जाते हैं। दुष्ट आदमी के साथ निभाना बहुत कठिन है।

६ जो रहीम ओछो—रहीम कहते हैं कि यदि नीच आदमी बड़ा पद प्राप्त कर ले तो वह बहुत घमण्ड करने लगता है। जैसे शतरंज की गोटियाँ जब प्यादे से फर्ज़ी बन जाती हैं तो टेढ़ी टेढ़ी चलने लगती हैं। प्यादा सीधा एक ही घर आगे चल सकता है, पर जब फर्ज़ी (वज़ीर) बन जाता है तो वह आगे, पीछे, तिरछा सब तरफ़ चल सकता है।

७ नैन सलोने—नैन=आँखें। सलोने=१ सुन्दर, २.नमकीन। अधर=ओष्ठ। मधु=मीठा।

आँखें सलोनी हैं और ओष्ठ मधुर हैं दोनों मे से कम कौन है? (भाव यह है कि आँख की सुन्दरता और ओष्ठ की मधुरता में किसको नीचा और किसको ऊँचा कहा जाय) क्योंकि नमकीन खाने पर मीठा अच्छा लगता है और मीठे पर नमकीन अच्छा लगता है। एक से तृप्ति नहीं होती, दोनों ही चाहियें।

८ जो रहिमन दीपक दशा—पट=कपड़ा।

जैसे दीपक की जिस कपडे की आड में छिपा कर रक्षा की जाती है (हवा से दीआ न बुझ जाय इसलिए जिस कपड़े की आड करके उसकी बुझने से रक्षा की जाती है) समय पड़ने पर—विपत्ति पड़ने पर उसी कपड़े की ही चोट दीए पर

होती है, उसी कपड़े की चोट से दीआ बुझा दिया जाता है ऐसे ही दीए की दशा के समान ही विपत्ति में मनुष्य की भी दशा होती है, विपत्ति में रक्षक ही नष्ट करने वाले होजाते हैं।

९ रहिमन राज सराहिये—तरैयन=तारों को।

वही राज्य प्रशंसा के योग्य है जो चन्द्रमा के समान सुखदायक हो। सूर्य की क्या कहें, वह तो तारों—नक्षत्रों—को नष्ट करके अकेला ही तपता है। कहते हैं यह दोहा रहीम ने उस समय लिखा था जब जहाँगीर ने राज्य-सिंहासन के लिये अपने भाइयों का वध किया था।

१० कमला थिर—पुरातन पुरुष=यह पद श्लिष्ट है इसके दो अर्थ हैं एक विष्णु भगवान् और दूसरा बूढ़ा आदमी।

रहीम कहते हैं कि कमला (लक्ष्मी, धन) स्थिर नहीं, यह सभी जानते हैं। लक्ष्मी पुरातन पुरुष (विष्णु) की स्त्री ही तो है अतः चंचल क्यों न हो? क्योंकि पुरातन पुरुष (बूढ़े) की युवती स्त्री प्रायः चंचल होती है।

११ जे गरीब सों हित—जो गरीब से हित (प्रेम) करते हैं, वे लोग धन्य हैं क्या विचारा सुदामा कृष्ण की मित्रता के योग्य था? (पर वे कृष्ण धन्य हैं जो उन्होंने उससे मित्रता की)।

१२ जो रहीम उत्तम—रहीम कहते हैं कि जो उत्तम प्रकृति के लोग हैं, कुसंग उनका क्या कर सकता है? चन्दन वृक्ष को कभी विष नहीं चढ़ता यद्यपि हर समय उस पर साँप लिपटे रहते हैं।

२२ जिहि रहीम तन—रहीम कहते हैं कि जिसने तन और मन हर लिया है और हृदय में घर कर लिया है उसमे दुःख-सुख कहने की अब कौनसी बात रह गई है ?

२३ जो पुरुसार्थ ते कहूँ—रहीम कहते हैं कि 'जो कहीं केवल पुरुषार्थ से लक्ष्मी प्राप्त हो जाती, तो पेट भरने के लिए भीम जैसा बली आदमी विराट् राजा के घर में रसोइये का काम क्यों करता ? अर्थात् केवल पुरुषार्थ से लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती, लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए भाग्य आदि साधन भी चाहियें।

जब पाँचो पाडव १३ वें वर्ष गुप्त वेष में राजा विराट् के यहा रहे थे तब भीमसेन ने रसोइये का काम किया था।

२४ ज्यों रहीम गति—बारे=१. बाल्यावस्था में, २. जलाने पर। बढे=१. बडे होने पर, २ दीपक के बुझाने पर।

रहीम कहते हैं कि दीए की जो हालत होती है, कुल कुपूत की (कुल में जो कुपूत है उसकी) भी वही होती है कुपूत बारे (बाल्यावस्था में) कुल में उजाला करता है। (उस समय तक सब यही समझते हैं कि वह कुल में उजाला करेगा) पर बढ़े (बडा होने पर) कुल को अंधेरा करता है—अर्थात् कुल को बदनाम कर देता है। इसी तरह दीपक के भी बारे (जलाने पर) उजियाला हो जाता है और बढ़े (बुझने पर) अंधेरा हो जाता है।

२५ सम्पति भरम गँवाई कै—भरम=धोखा, चक्र, फेर। किसी धोखे या चक्र में (या किसी व्यसन के फेर में) सम्पत्ति गँवा देने पर साथ मे कुछ नहीं रहता। उस

(सम्पत्तिहीन) की दशा वैसे ही हो जाती है जैसे कि दिन में आकाश में ज्योतिहीन चन्द्रमा की होती है।

२६ अनुचित उचित—छोटे आदमी उचित और अनुचित सब काम बड़ों के ज़ोर (सहारे) पर ही करते हैं। जैसे चन्द्रमा का सहारा पाकर चकोर आग भी पचा लेता है। चकोर चन्द्रमा का बड़ा प्रेमी कहा जाता है, वह चन्द्रमा की ओर एकटक देखा करता है, यहाँ तक कि यह आग की चिनगारियों को चन्द्रमा की किरण समझकर खा जाता है।

२७ धनि रहीम—पंक=कीचड़। लघुजिय=छोटे छोटे जीव, कीड़े मकोड़े। अघा=तृप्त हो जाते हैं। उदधि=समुद्र।

रहीम कहते हैं कि कीचड़ का थोड़ा सा जल भी धन्य (बड़ाई के योग्य) है, जिसको पीकर कीड़े मकोड़े तृप्त हो जाते हैं। समुद्र की क्या बड़ाई की जाय, जिसके पास से सारा संसार ही प्यासा जाता है, एक मनुष्य भी अपनी प्यास नहीं बुझा सकता।

२८. मांगे घटत रहीम—चाहे कितना ही बड़ा काम क्यों न करो, तो भी माँगने पर पद घट जाता है। विष्णु भगवान् ने यद्यपि तीन क़दमों में सारी पृथ्वी नाप डाली थी तो भी (बलि से माँगने के कारण) उनका नाम वामन ही है।

२९ नाद रीझि—नाद=शब्द, बांसुरी का स्वर। रीझि=प्रसन्न होकर।

बांसुरी के स्वर पर प्रसन्न होकर मृग अपना शरीर दे देते हैं और उत्तम मनुष्य प्रसन्न होने पर प्रेम सहित धन देते

४० अमृत ऐसे—रिस=क्रोध । गाँस=अंकुर, मिलावट। अमृत के समान मीठे वचनों में क्रोध की गाँस ऐसी ही है जैसे मिश्री में मिली हुई नीरस (सूखी) बाँस की फाँस हो ।

४१ रहिमन मनहिं लगाइ कै—रहीम कहते हैं कि मन लगाकर तुम देख क्यों नहीं लेते, मनुष्य को वश करने की क्या बात है, (मन लगाने से तो) स्वयं नारायण तक वश मे हो जाते हैं ।

४२ रहिमन अँसुवा—ढरि=ढर कर, गिर कर । गेह=घर । रहीम कहते हैं कि आँसू आँखों से गिरकर दिल का दुख प्रकट कर देते हैं । भला जिसे घर से निकालोगे वह घर का भेद क्या न कह देगा ?

४३ गुन ते लेत—गुन=(१) रस्सी, (२) गुण। रहीम कहते हैं कि गुन (रस्सी) द्वारा कुएँ से जल निकाल लिया जाता है, कहीं किसी का मन कुएँ से भी अधिक गहरा होता है ? भाव यह कि जब गुन (रस्सी द्वारा) कुएँ से जल निकल सकता है तब गुन (गुणों) द्वारा दूसरे के मन (जो कुएँ से कम ही गहरा होता है) की बात क्यों नहीं जानी जा सकती ?

४४ रहिमन मन—दीवान=मत्री । रीझ=प्रसन्न हुए। रहीम कहते हैं कि मन महाराज के नेत्ररूपी मत्री के कोई नहीं । क्योंकि नेत्र जिसे देखकर प्रसन्न हुए (उसी

की प्रसन्नता का विश्वास करके) मन महाराज उसी के हाथ बिक जाते हैं ।

४५ शीत हरत तम—शीत=जाडा । तम=अँधेरा । भुवन भरत=ससार को भर देता है।

जो सूर्य ठड का नाश करता है अँधेरे को दूर करता है और सारे ससार को बिना चूक प्रकाश से भर देता है, उस सूर्य को उल्लू नीचा समझे तो उसका क्या बिगडा ?

४६ नहिं रहीम कछु रूप गुन—दमी कुत्ते मे न तो रूप और गुन ही होत हैं, और न उसे शिकार से ही प्रेम होता है। अगर उसे रखा जाय तो वह केवल भूख मिटाने के लिए ही घूमता है ।

४७ कागज कासों पूतरा—यह (मनुष्य रूपी) कागज़ का पुतला सहज में ही घुल जायगा, जल्दी ही नष्ट हो जायगा रहीम कहते हैं कि देखो यह आश्चर्य है कि वह कागज़ का पुतला वायु खींचता है—अर्थात् स्वांस लेता है ।

४८ कहि रहीम इक दीप—रहीम कहत हैं एक दीपक से सब खजाना प्रकट हो जाता है। फिर शरीर का प्रेम कैसे छिपे जिस में आँख-रूपी दो दीपक जल रहे हैं।

४९ जिहि रहीम—रहीम कहते हैं कि जिसने अपना मन चतुर चकोर सा बना लिया है, वह रात-दिन कृष्णरूपी चन्द्र की ओर लगा रहता है ।

५० कहि रहीम धन—रहीम कहते हैं कि धनियों का ही धन बढता घटता है और [illegible] जाती है । उन

चक्कर में पडकर मृत्यु समय (इस ससार से) पछताकर चल देता है।

६२ जो रहिम करिबो—मात=मदमस्त इन्द्र।

इन्द्र को एक बार अभिमान हुआ कि मैं सब से बडा हूँ। कृष्ण ने उसका अभिमान नष्ट करने के लिए ब्रज से उसकी पूजा नष्ट करा दी तब उसने वर्षा द्वारा ब्रज को बहा देना चाहा। इस पर भगवान् ने अपने हाथ में गोवर्धन पहाड धारण कर सब ब्रजवासियो को उसके नीचे बुलाकर उनकी रक्षा कर ली। अन्त मे विवश हो इन्द्र को हार माननी पडी। रहीम (कृष्ण को सम्बोधन करके कहते हैं कि) यदि तुमने ब्रज का यह हाल करना था अर्थात् इसी तरह अपने वियोग से तडपाना था तो हे गोपाल गोवर्धन पहाड को धारण कर मदमस्त (इन्द्र) को क्यों दुःख दिया था?

६३ दीरघ दोहा अर्थ—नटकुडली=क़लाबाज़ी दिखाने का एक छोटा सा चक्र जिसमें से शरीर सिकोड कर नट कूद जाता है।

दोहे मे अर्थ तो बडा होता है, पर अक्षर (केवल ४८) थोड़े से ही होते हैं। सो ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि मोटा ताज़ा करतबी नट तमाशा करते हुए (शरीर को तौलकर) सिमिट कर और कूदकर लकडी के छोटे से घेरे में से साफ़ निकल जाता हो—अर्थात छोटे से दोहे मे भी बडा अर्थ सही-सलामत निभाया जा सकता है।

६४ जे रहीम विधि—जिनको विधि (ब्रह्मा) ने बडा किया है उनके दोष कौन निकाल सकता है? चन्द्र चाहे दुबला और कुबडा हो तो भी नक्षत्रो से बढकर ही होता है।

६५ अब रहीम घर—मधुकरी=भिक्षा।

रहीम अब घर २ फिरता है और भिक्षा माँग कर खाता है। मित्रो, अब मित्रता छोड दो क्यों कि रहीम अब वह पहले जैसा धनी रहीम नहीं है। अकबर के मरनेके बाद जहाँगीर ने रहीम को राजद्रोह के अभियोग में कैद कर दिया था कैद के छूटने के बाद इनकी अवस्था बडी खराब हो गई। इस हालात मे भी याचक लोग इन्हें घेरे रहते थे। इनकी माँग पूरी न कर पाने के करण इन्हें बडा कष्ट होता था। इसपर इन्होने याचकोंके प्रति यह दोहा कहा था।

६६ एक साधे सब सधै—रहीम कहते हैं कि जैसे जड को सींचने से पेड मे खूब फूल तथा फल लगते हैं, ऐसे ही एक काम को पूरा करने पर सब काम पूरे हो जाते हैं, सब कामों की तरफ दौडने से सब नष्ट हो जाते हैं।

६७ पात पात कर—रहीम कहते हैं कि (जड को न सींच) एक एक पत्ते को सींचने और (सारी दाल में एक दम नमक न डाल कर) एक एक वडी में नमक डालने की बुद्धि (तरीके) से बताओ कौन सा काम पूरा हो सकता है ?

६८ रहिमन धोखे भाव मे—रहीम कहते हैं कि धोखे से भी यदि मुख से कभी राम का नाम निकल जाय तो काम क्रोध आदि मे सदैव फँसा रहने वाला (जो सब पापों का घर है वह) भी पूर्ण (मोक्ष) पद को पा जाता है।

६९ रहिमन छिमा बडेन—रहीम कहते हैं छोटों का काम ही उत्पात करना है पर बडों को क्षमा ही करनी चाहिये। यदि भृगु ने विष्णु भगवान् को लात मारी तो भगवान् का क्या बिगडा ? अतएव भगवान् ने उसे क्षमा कर दिया।

७० रहिमन कठिन चिताहु—दहति=जलाती है।

रहीम कहते हैं कि अपने चित्त में चिन्ता को चिता से भी

जीविका। गर=गला। मीड़ि=दबाकर। मरोरि=मरोड़ कर। वैरी=शत्रु। पीसि=पीस कर। वरदान=आशीर्वाद। कर=हाथ राजन=राजाओं। हद=हद, सीमा, मर्यादा। तेगबल=तलवार की शक्ति। देव=देवता। देवल=देवालय, मन्दिर। स्वधर्म=अपना धर्म।

शिवाजी ने अपनी तलवार के बल से वेदों और पुराणों की रक्षा की। सार-युत रामनाम को, जिह्वारूपी सुन्दर घर में रक्खा। हिन्दुओं की चोटी, तथा सिपाहियों की रोटी (रोज़ी, जीविका) तथा कन्धे पर जनेऊ और गले में माला को बचाया। मुगलों को मर्दन करके और बादशाहों को मरोड़कर, शत्रुओं को पीस डाला। अपने हाथ में वरदान की शक्ति रक्खी। शिवाजी ने अपनी तलवार की शक्ति से राजाओं की राज्य की सीमा रक्खी, मन्दिरों में देवता और (हिन्दुओं के) घर-घर में अपने धर्म को रक्खा।

५-६ उतरि पलँग ते—उतरि=उतर कर। ते=से। धरा=ज़मीन, धरती। पै=पर। पग=पैर। तेऊ=वे भी। सगबग=तेज़ी से। निसि=निशि, रात। अति=बहुत। अकुलाती=व्याकुल (बेचैन) होती हैं। मुरझाती=सूख जाती हैं। गात=शरीर। सोहाती=अच्छी लगती। बोलैं=बोलने पर। अनखाती हैं=झुँझला उठती हैं। सिंह=शेर साहि=शाहजी। सपूत=सुपुत्र। सिवा=शिवा जी। धाक=रोब, प्रताप। अरि-नार=शत्रु की स्त्रियाँ। बिललाती=रोतीं। कोऊ=कोई। करैं=करती हैं। घाती=आत्मघात, आत्महत्या। घरै=घर में। तीन बेर=तीन बार, तीन मर्तबा। बीन बेर=बेर बीनकर।

भूषण कहते हैं कि सिंह के समान शाहजी के सुपुत्र शिवाजी ! आपका प्रताप सुन कर शत्रुओं की स्त्रियाँ बेचैन हो रही हैं। जिन सुकुमार स्त्रियों ने कभी पलग से उतर कर ज़मीन पर पैर भी न रक्खा था, अब वे भी डर के मारे रात दिन तेज़ी से भागती चली जा रही हैं। वे बहुत व्याकुल हैं, उनके मुख मुरझा गये हैं और वे घबराहट से अपने शरीर भी नहीं ढक पाती हैं। उन्हें किसी की बात अच्छी नहीं लगती और बोलने पर झुँझला उठती हैं। कोई आत्मघात करती हैं। कोई छाती पीट कर रोती हैं। जो घर में तीन तीन बार भोजन करती थीं आज वे ही जगल में बेर बीन कर खा रही हैं।

७-८ किबले की—किबले की ठौर=पूजा के स्थान (योग्य)। ताको=उसको। मेहर=कृपा, दया। हू=भी। मा को जायो=एक ही माँ से उत्पन्न। बादि=व्यर्थ। चूक=दोष, गुनाह।

पूजा के योग्य जो तेरा पिता बादशाह शाहजहाँ था उसको तूने कैद कर दिया जिससे मानों मक्के में आग लगा दी (अर्थात् मक्के में आग लगाने क समान पाप किया)। बड़ा भाई जो दारा था उसे पकड़ कर तूने कैद कर दिया, तुझे ज़रा भी दया न आई कि माँ का जाया हुआ तेरा सगा भाई है। मुरादबक्श भाई से व्यर्थ में गुनाहगार बनने के लिए विश्वासघात करने के लिए कुरान को बीच में डालकर तूने खुदा की कसम खाई थी। भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब ! सुन, इतनी करतूतें कर के फिर तूने यह बादशाही पाई है।

१२ पिसुन छर्यो—पिशुन=धूर्त, दुष्ट। दाझ्यो=जला हुआ। धूर्त से छला गया मनुष्य भले का भी भूल कर विश्वास नहीं करता, जैसे दूध से जला हुआ, छाछ (लस्सी) को भी फूँक-फूँक कर पीता है।

१३ प्राण तृषातुर—
तृषातुर (प्यास से व्याकुल) मनुष्य के प्राण थोड़ा-सा जल देने से भी बच जाते हैं। परन्तु पीछे (प्राण चले जाने पर) पानी से भरकर हज़ार घड़े डालने पर भी प्राण नहीं मिलते।

१४ अनमिलती जोई—जो कोई बेमेल बात करता है उसकी ही हँसी होती है। जैसे यदि कोई योगी योगाभ्यास में विषयभोग की आशा करे (तो उसकी हसी ही होगी)

१५ बड़े बड़ेन को दुख—थाप=निश्चय। सरिता=नदी।
बड़े ही बड़ों का दुःख दूर करते हैं, पर नीच (छोटे) नहीं, यह निश्चय है जैसे पहाड़ की गरमी को बादल मिटाता है, नदी नहीं।

१६ गुरुता लघुता—मनुष्य का बड़ापन और छोटापन आश्रय, वश से ही होता है। जैसे हाथी जल में विन्ध्याचल पहाड़ के बराबर मालूम होता है और वही शीशे में छोटा दिखाई देता है।

१७ उपकारी उपकार—परोपकारी आदमी संसार में सबके साथ उपकार ही करता है, जैसे चन्दन मलय पर्वत के कड़वे और मीठे सभी वृक्षों को सुगन्धित कर देता है।

१८ विधि रूठे—विधि=दैव, भाग्य। तूठे=संतुष्ट होना, होना। दव=आग। नलिनी=कमल। हिम=बरफ़।

दैव के रूठने पर कौन प्रसन्न होता है ? और कौन सहायता कर सकता है (कोई नहीं)। जंगल की आग के डर से कमल जल के अन्दर रहता है, परन्तु वहाँ भी उसे बरफ जला देती है।

१९ करियै सुख को—यह कौन सी बुद्धिमत्ता है कि काम किया तो सुख के लिए जाय पर उस से हो उल्टा दुख। उस सोने को जला देना चाहिए जिस से कि कान फटे। भाव यह है कि सोने के आभूषण शोभा के लिए पहने जाते हैं पर यदि वे इतने भारी हों कि उनसे कान फटने लगें (कष्ट मालूम हो) तो उन से क्या लाभ।

२० नैना देत बताय—हृदय की सब भलाई और बुराई आँखें बता देती है, जैसे साफ़ शीशा अच्छा या बुरा प्रकट कर देता है। (मूल पुस्तक मे "हित कौं" की जगह "हिय कौं" चाहिए)

२१ अति परचै—अत्यधिक परिचय (जान पहचान) से अरुचि (नफ़रत) और अनादर का भाव पैदा हो जाता है। जैसे कि मलयाचल की भीलनी चन्दन की कदर नहीं करती और उसे (साधारण लकड़ी के समान) जला डालती है। (मलयाचल पर चन्दन बहुत अधिक होता है इसलिए वहाँ उसका कोई मूल्य नहीं होता)

२२ सो ताके अवगुण—जो जिसको नहीं चाहता वह उसके दोष कहता है (बुराई करता है)। जैसे वियोगिनी चद्रमा को तपा हुआ (जलाने वाला) कलंकयुक्त और ज़हर से भरा हुआ कहती है।

२३ विधि के निरचे—विधाता के किये (अर्थात् भाग्य के फेर से) अच्छे आदमी भी बुरे हो जाते हैं। जो आँचल हवा से दीपक की रक्षा करता है वही उसे बुझा भी देता है।

२४ जाकों जैसो भाव—जिसका जैसा भाव होता है वह उसे (दूसरों को) वैसा ही मानता है । जैसे चन्द्रमा को कोई तो सुधाकर (अमृत की खान) कहता है और कोई कहता है कि यह कलंक वाला है।

२५ आप बुरे जग है बुरो—जो आप बुरे हैं उन्हें सारा संसार बुरा जानता है और जो अच्छे हैं उन्हें सारा संसार अच्छा जानता है। बहेड़े की छाया को सब छोड़ देते हैं (क्योंकि वह बुरा है) और आम की छाया का सब आकर आश्रय लेते हैं (क्योंकि वह स्वयं अच्छा है)

२६ भाव भाव की—अपने-अपने विचार के अधीन ही सिद्धि (लक्ष्य की पूर्ति) है और इसी तरह एक दूसरे के विचार में भेद है। यदि मानें तो देवता है और नहीं तो दीवार का लेप ही है अर्थात एक आदमी पत्थर में भी देवता का विश्वास करके उद्देश्य पर पहुँच सकता है और दूसरा जो श्रद्धा-विश्वास से हीन है, उसके लिये वह पत्थर ही है।

२७ बिन गुन कुल जानै—मनुहारि=खुशामद।

गुण और कुल को जाने बिना किसी का आदर और खुशामद नहीं करनी चाहिये। क्यों कि कई दुष्ट आदमी साधु का वेष धारण कर लोगों को ठगते फिरते हैं।

२८ हित हूँ की कहिये—जो आदमी बेसमझ (मूर्ख) हो उसे भलाई की बात भी नहीं कहनी चाहिये। जैसे नकटे (कटी हुई ---- वाले) आदमी को शीशा दिखाने से गुस्सा ही आता है।

२९ अति अनीति—मन को प्यारा भी हो तो भी धन अनीति (अन्याय, जुल्म) करके नहीं लेना चाहिये। सोने की छुरी मिलने पर भी कोई उसे पेट में नहीं मारता।

३० सबै सहायक—सब बलवान के ही सहायक होते हैं, कोई निर्बल का सहायक नहीं होता। पवन (हवा) आग को जलाती है पर बेचारे दीये को बुझा देती है।

३१ कछु बसाय—बलवान के साथ तो कुछ बस नहीं चलता परन्तु कमजोर के साथ (उसे गिराने, नीचा दिखाने के लिये) जोर लगाते हैं। पहाड़ तो हिलता नहीं, पर हवा जोर के झोंके से वृक्षों को उखाड़ डालती है।

३२ समै समुझि कै कीजिये—वही काम अच्छा होता है जो समय का विचार करके किया जाय। भोजन करत समय सैंधव माँगने पर घोडे का क्या काम। (सैन्धव नमक को भी कहते हैं और घोड़े को भी। भोजन करते समय यदि सैंधव माँगा जाय तो नमक लाना चाहिये न कि घोडा) मूल पुस्तक में 'सबै समझ के" की जहग "समै समझ कै" चाहिये।

३३ जिय पिय चाहै—घन=कपूर। उपचार=इलाज। करार= आराम।

दिल तो प्यारे को चाहता हे (अर्थात् दिल तो विरह की आग से जला है) और तुम कपूर चन्दन से इलाज करते हो। यदि बीमारी कुछ और हो और उसकी दवाई कुछ और हो की जाय तो आराम कैसे हो सकता है।

३४ अति हठ मत कर—अधिक हठ (ज़िद) न कर, हठ बढने पर कोई बात भी नहीं करता। ज्यों ज्यों कम्बल भीगता है त्यों त्यों भारी होता जाता है?

३५ लालच हूँ—लालच भी ऐसा ही अच्छा होता है जिससे

आशा पूरी हो जाय (छोटी छोटी चीज़ों के लिए लालच अच्छा नहीं)। कहीं ओस चाटने से भी किसी की प्यास बुझी है ?

३६ विपहू ते सरमी—क्रोध में प्रेमरस की वात जहर की तरह बुरी लगती है, जैसे पित्तके बुखार वालोंको दाख कड़वी लगती है।

३७ हरिरस परिहरि—मूर्ख आदमी परमात्मा के (भक्ति) रस को छोड़कर विषयों के रस को इकट्ठा करता है (अर्थात् विषय भोगों में फँसा रहता है), जैसे कोई अमृत को छोड़ कर जहर का पान करता है।

३८ असुभ करत सोइ—साधु पुरुषों के वचन, ऐसे अनुपम होते हैं, कि वे चाहे बुराई करने वाले भी हों तो भी उनसे भलाई ही होती है। श्रवण के पिता ने दशरथ को शाप दिया परन्तु वही वर-रूप हो गया। (दशरथ के वाण से श्रवण के मर जाने पर उसके पिता ने दशरथ को शाप दिया था कि जैसे हम पुत्र-वियोग से मर रहे हैं वैसे तू भी पुत्र के वियोग से मरेगा। यह शाप दशरथ के लिए वर-रूप हो गया, क्योंकि इससे दशरथ के घर पुत्र होना निश्चित हो गया)।

३९ एक भले सबको—इस शब्द (कथन) को विचार करके देखो कि "एक अच्छे आदमी से सब की भलाई होती है" जैसे—हरिश्चन्द्र के सत (भलाई, सत्यवादीपन के) कारण अनेक जीवों का उद्धार हुआ।

४० एक बुरे सब को—बलवान् आदमी के क्रोध के कारण एक के बुरा होने से सब का बुरा होता है। अर्जुन (सहस्रार्जुन) के दोष से सब क्षत्रियों का नाश हो गया (सहस्रबाहु ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर परशुराम ने सहस्रबाहु को मारकर इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था)।

४१ आडम्बर तजि—आडम्बर (दिखावे) को छोड़कर चित्त लगा कर गुणों को इकट्ठा करो। बिना दूध के गौ नहीं बिकती, चाहे घण्टा लाकर उसके गले में क्यों न बाँध दो।

४२ जैसे गुन दीनो—विधाता ने जैसा गुण दिया है वैसा रूप कहाँ? ये दोनों (गुण और रूप) यदि कहीं एक में पाये जाएँ तो सोने और सुगन्ध का योग हुआ समझना चाहिये।

४३ होय कछू समझै—कनक=धतूरा।

जिसकी बुद्धि उल्टी होती है वह, होता कुछ है और समझता कुछ है। जैसे धतूरा खाने वाला काले और सफ़ेद रंग को पीला देखा करता है।

४४ प्रेम निबाहन कठिन है—प्रेम का निभाना कठिन है (इसलिये जो कोई प्रेम करना चाहे वह) समझ सोच कर करे। भाँग का खाना तो सरल है परन्तु उसकी लहर (तरङ्ग को रोकना) कठिन होता है।

४५ देव सेव फल देत—जिसकी जैसी भावना होती है उसको सेवा करने पर देवता वैसा ही फल देते हैं। जैसे—जिस प्रकार का मुँह बनाकर शीशे मे देखो, वैसा ही दिखाई देता है।

४६ जैसो बन्धन प्रेम—प्रेम का जैसा बन्धन है वैसा और कोई बन्धन नहीं। भौरा लकड़ी को तो छेद देता है परन्तु वही कमल को (जो लकड़ी की अपेक्षा बहुत कोमल होता है) छेद कर (उससे बाहर) नहीं निकलता। कमल में भौरे का प्रेम होता है। भला प्रेम का बन्धन कैसे काटा जा सकता है?

४७ जो सबही को—जो सभी को देता है उसीको दाता कहना चाहिये। बादल वर्षा करते समय, समतल और ऊँचे नीचे स्थान का कोई विचार नहीं करता।

६१ निहचै भावी की—यह निश्चय मानो, कि यदि कहीं होनहार को टालने का कोई उपाय होता, तो नल और हरिश्चन्द्र जैसे राजा कष्ट न उठाते।

६२ बहुत निबल—करी=हाथी।

बहुत निर्बल भी यदि मिल कर बल लगायें (यदि मिल कर उद्योग करें) तो जो कुछ चाहें कर डालें। देखो (छोटे-छोटे) तिनकों से बनाई हुई रस्सी से हाथी बाँधा जाता है।

६३ सुजन कुसगति—बुरी सगत होने पर भी अच्छे आदमी अपनी सज्जनता को नहीं छोडते। जैसे साँपों के समूह का साथ होते हुए भी (साँपों के सदा लिपटे रहने पर भी) चन्दन के वृक्ष जहर को धारण नहीं करते।

६४ थोरे ही गुण है—कहीं-कहीं थोड़े से गुण से भी, ससार में प्रकट (मशहूर) होजाता है। एक ही हाथ से (सूँड से) हाथी जय प्राप्त कर लेता है, उसके हज़ार हाथ तो नहीं होते।

६५ बिनसत सतगुण—गुणहीन आदमी के पास जाने से गुणी आदमी के सैंकडों गुण नष्ट होजाते हैं। जैसे सुरमे के पहाड पर चन्द्रमा की किरणों का ज़रा भी प्रकाश नहीं होता।

६६ साच झूठ निरनै—जो नीति में होशियार हो वही सच और झूठ का निश्चय कर सकता है। राजहस के बिना दूध और पानी को कौन अलग-अलग कर सकता है?

६७जे पर ते पर—यह समझलो कि जो पराये हैं वे पराये ही हैं, उनमें से कोई अपने नहीं होते। कौआ यद्यपि पालता पोसता है फिर भी कोयल का बच्चा कौआ नहीं हो जाता।

६८ उद्यम कबहु—उनयो=उमड़ा हुआ। पयोद=बादल।

दूसरे की (सहायता की) उम्मीद की खुशी में (आशा में) अपना उद्योग कभी न छोड़ो। बादल को उमडा देख कर कहीं गागर फोडी जाती है ?

६९ बडे सहज ही—बडे आदमी छोटी सी बात पर ही खुश होकर इनाम दे देते हैं। जैसे तुलसी के पत्ते से विष्णु और आक तथा धतूरे से महादेव (खुश होकर निहाल कर देते हैं)।

७० यदपि अपनो होय—सीर = साझा।

चाहे अपना भी हो फिर भी दु:ख में हिस्सा कोई नहीं लेता। जैसे दुखती हुई एक अंगुली की पीडा उसके पास वाली दूसरी अंगुली नहीं ले लेती।

७१ हितहू भलो न—नीच आदमी का न तो प्रेम ही अच्छा होता है और न वैर ही। कुत्ता (प्रेम करता है तो) चाट कर शरीर को अपवित्र कर देता है और (वैर करता है तो) काट कर दु:ख देता है।

७२ धन बाढे मन—जलज = कमल।

धन के बढ जाने से मन बढ जाता है और फिर वह मन कभी घटता नहीं। जैसे जल के साथ कमल बढ जाता है पर फिर जल के घटने पर वह घटता नहीं।

७३ देवन हूँ सों देव—प्रभु (महादेव) देवों के भी देव हैं, इन्द्र और राजा उनके सामने क्या हैं (कुछ नहीं) तथा धनेश (कुबेर) उनका मित्र है फिर भी महादेव केवल चर्म ही धारण करते हैं।

७४ अनमिल सुमिल—अच्छे आदमियों के समाज से बुरे आदमी के उठ जाने पर ही चैन पडती है। जैसे तिनका आँख में पडकर दु:ख देता है और उसके निकलने से आँखें खिल जाती हैं।

८९ जो हाजिर—अवसान=समय, मौका।

हथियार वही है जो समय पर काम दे। देखो, बलराम जी ने कुशा से ही पौराणिक मुनि सूत* के प्राण हर लिये थे।

९० काहू सो नाहीं—अपरापत=अप्राप्त, भविष्य, भाग्य। अपरापत के अक=भाग्य में लिखा।

भाग्य में लिखा किसी से मेटे नहीं मिटता। यद्यपि चन्द्रमा महादेव के सिर बसता है तो भी वह पूर्ण नहीं हुआ।

९१ कोऊ दूर न—विधाता के लिखे उल्टे अकों (दुर्भाग्य) को कोई दूर नहीं कर सकता। समुद्र चन्द्रमा का पिता होता हुआ भी उसके कलक को नहीं धो सका। चन्द्रमा का जन्म समुद्र से माना जाता है।

९२ करत करत अभ्यास—अभ्यास करते-करते जड-बुद्धि वाला भी ज्ञानवान होजाता है। जैसे (कोमल) रस्सी के बराबर आने जाने से कठोर पत्थर पर भी निशान पड जाता है।

९३ सुख दिखाय—नीच मनुष्य से लडना नहीं चाहिए, उसे तो सुख दिखाकर दु ख देना चाहिये। जो पुरुष गुड देने से ही मर जाय उसे जहर क्यों दिया जाय?

९४ सब सुख है—सब सुख सन्तोष में ही है इसलिये मन में सन्तोष धारण करो। केवल हवा से ही पुष्ट होने पर भी (केवल हवा से ही पेट भरने पर भी) साँप ज़रा भी कमजोर नहीं होता।

---

* पौराणिक मुनि सूत ने बलराम को प्रणाम नहीं किया था इस लिए बलदेव जी ने उसको कुशा के आघात से मार डाला।

९५ पाय परेहू बिसुन=विसमि=विश्राम करके। जीवन=जल, प्राण।

दुष्ट आदमी के पाव पडने पर भी उसकी बात का विश्वास न करो। जैसे कुएँ का ढोल झुककर भी कुएँ का जीवन अर्थात् पानी हर ले जाता है। दुष्ट आदमी भी इस तरह प्रीति दिखा कर अन्त में धोखा देता है।

९६ बिनसत बार न—अबर-डबर=वह लाली जो सन्ध्या समय आकाश में दिखाई देती है।

नीच मनुष्य के प्रेम को नष्ट होते उसी तरह देर नहीं लगती जिस तरह सन्ध्या समय की आकाश की लाली और रेत की दीवार थोडी देर में ही नष्ट हो जाती है।

९७ कहे मूढ की बात—मूर्ख के बात करने (सलाह देने) पर भी वही करिये जो अपने दिल में हो। दूसरे के कसम दिलाने पर भी भला कोई आग में कूद पडता है?

९८ सुबुधि बीच परि—बुद्धिमान आदमी दो आदमियों के बीच में पड कर प्रेम-प्रवाह से दोनों की लडाई को मिटा देते हैं। जैसे देहली (दहलीज) पर रखा हुआ दीप घर और आँगन दोनो का अन्धेरा दूर कर देता है।

९९ कुल सपूत जान्यो—अच्छे खानदान का लडका, सुन्दर शरीर और अच्छे लक्षण (चिह्न या आचरण) देखकर ही जान लिया जाता है। जैसे होनहार (जिसने आगे चलकर तरक्की करनी हो उस) पौदे के पत्ते (पहले से ही) चिकने होते हैं।

१०० का रस में का रोप में—क्या प्रेम मे और क्या क्रोध में (किसी भी हालत में) शत्रु पर विश्वास न करना चाहिये। जैसे पानी चाहे गरम हो, चाहे ठंडा हो पर आगको बुझाही डालता है।

१०१ दोऊ चाह मिलन—यदि दोनों आपस में मिलना चाहे तो मिलाप निश्चित समझो। कभी एक हाथ से ताली नहीं बजती।

१०२ जा में विद्या—जिस में नारदमुनि के समान (इधर की उधर लगाने की) विद्या है वह लाग (दाँव) बिगडने नहीं देता अर्थात् दाँव नहीं चूकता। चोर को वह कहता है पैस (घुस जा), कुत्ते को कहता है भूस (भौंक) और धनी को कहता है, जाग जा।

१०३ सबुध अबुध—हे बुद्धिमान पुरुष! मूर्ख की सेवा का स्वरूप अपने हृदय में धारण करलो, यह ऐसी ही (निरर्थक) है जैसे सूखी जगह पर लगाया हुआ कमल या बहिरे के कान में किया हुआ जाप निरर्थक हो जाता है।

१०४ ऊँचे पद को पाय—छोटे आदमी का ऊँचा पद पा लेने पर जल्दी ही पतन हो जाता है जैसे पानी पहले तो बादल से पहाड पर गिरता है और फिर वहाँ से भी और नीचे ढुलक जाता है।

१०५ विना दिये न—सुरभि=वसन्तकाल। सपल्लव=पत्ते सहित।

सब कोई यह समझ लो कि विना दिये कुछ नहीं मिलता में [illegible] गिर जाते हैं तब कहीं फिर वसन्त [illegible] जाते हैं। पहले पत्तो को दे देने पर [illegible]

[illegible] सा भी तिनका [illegible] इन्हीं आँखों में [illegible]

खटकता [illegible]

की मूर्ति को रख लिया जाय तो वह एक क्षण के लिये भी नहीं खटकती।

१०७ देखत कौ पै कछु—दुष्ट की प्रीति देखने को ही तथा मुख पर ही होती है पर (वास्तव में) कुछ नहीं होती है जैसे कि मृगतृष्णा में पानी की प्रतीति होती है (देखने में पानी प्रतीत होता है, वस्तुत पानी नहीं होता, उसी तरह नीच आदमी की प्रीति भी धोखा देने वाली होती है—गरमी के दिनों मे रेतीले मैदानों मे दूर क्षितिज की ओर जहाँ जल नहीं होता वहाँ गरम वायु की लहर आकाश की ओर उठती हुई ऐसी प्रतीत होती है कि जैसे जल की धारा बह रही हो। इससे धोखा खाकर मृग उस तरफ दौडता है पर वास्तव में पानी नहीं पाता। इसे मृग-तृष्णा कहते हैं)

१०८ उत्तम विद्या—उत्तम विद्या यदि नीच के पास हो तो भी ले लेनी चाहिये। कचन (सोना) यदि अपवित्र जगह पर पडा हो तो भी उसे कोई नहीं छोडता।

१०९ प्रीति टूटे हू—प्रीति के टूट जाने पर भी सज्जन के मन से भलाई नहीं छूटती। देखो, यदि कमल की डडी को तोड दिया जाय तो भी उसके अन्दर के धागे नहीं टूटते।

११० प्रभु को चिन्ता—मालिक को सब की चिन्ता रहती है आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वह बच्चे के जन्म के पहले ही माता के स्तनों मे दूध भर देता है।

१११ सेवक सोई जानिये—सच्चा सेवक उसी को समझना चाहिये जो मुसीबत में भी साथ रहे। धूप मे भी जैसे शरीर की छाया बिना परिवर्तन के सदा साथ रहती है।

१०१ दोऊ चाहं मिलन—यदि दोनों आपस में मिलना चाहें तो मिलाप निश्चित समझो। कभी एक हाथ से ताली नहीं बजती।

१०२ जा में विद्या—जिस में नारदमुनि के समान (इधर की उधर लगाने की) विद्या है वह लाग (दाँव) बिगड़ने नहीं देता अर्थात् दाँव नहीं चूकता। चोर को वह कहता है पैस (घुस जा), कुत्ते को कहता है भूस (भौंक) और धनी को कहता है, जाग जा।

१०३ सुबुध अबुध—हे बुद्धिमान पुरुष! मूर्ख की सेवा का स्वरूप अपने हृदय में धारण करलो, यह ऐसी ही (निरर्थक) है जैसे सूखी जगह पर लगाया हुआ कमल या बहिरे के कान में किया हुआ जाप निरर्थक हो जाता है।

१०४ ऊँचे पद को पाय—छोटे आदमी का ऊँचा पद पा लेने पर जल्दी ही पतन हो जाता है जैसे पानी, पहले तो बादल से पहाड़ पर गिरता है और फिर वहाँ से भी और नीचे ढुलक जाता है।

१०५ बिना दिये न—सुरभि=वसन्तकाल। सपल्लव=पत्तों सहित।

सब कोई यह समझ लो कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता शिशिर ऋतु में वृक्षों के पत्ते गिर जाते हैं तब कहीं फिर से वृक्ष पत्तों से युक्त हो जाते हैं। पहले पत्तों को दे देने पर नये पत्ते पाते हैं।

१०६ निस दिन—आँखोंमें यदि छोटा सा भी तिनका तो वह रात दिन खटकता रहता है। उन्हीं आँखों

की मूर्ति को रख लिया जाय तो वह एक क्षण के लिये भी नहीं रहसकती।

१०७ देखत कौ पै कछु—दुष्ट की प्रीति देखने को ही तथा मुख पर ही होती है पर (वास्तव में) कुछ नहीं होती है जैसे कि मृगतृष्णा मे पानी की प्रतीति होती है (देखने में पानी प्रतीत होता है, वस्तुत पानी नहीं होता, उसी तरह नीच आदमी की प्रीति भी धोखा देने वाली होती है—गरमी के दिनों में रेतीले मैदानों में दूर क्षितिज की ओर जहाँ जल नहीं होता वहाँ गरम वायु की लहर आकाश की ओर उठती हुई ऐसी प्रतीत होती है कि जैसे जलकी धारा बह रही हो। इससे धोखा खाकर मृग उस तरफ़ दौडता है पर वास्तव में पानी नहीं पाता। इसे मृग-तृष्णा कहते हैं)

१०८ उत्तम विद्या—उत्तम विद्या यदि नीच के पास हो तो भी ले लेनी चाहिये। कचन (सोना) यदि अपवित्र जगह पर पडा हो तो भी उसे कोई नहीं छोडता।

१०९ प्रीति टूटे हु—प्रीति के टूट जाने पर भी सज्जन के मन से भलाई नहीं छूटती। देखो, यदि कमल की डडी को तोड दिया जाय तो भी उसके अन्दर के धागे नहीं टूटते।

११० प्रभु को चिन्ता—मालिक को सब की चिन्ता रहती है आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वह बच्चे के जन्म के पहले ही माता के स्तनों मे दूध भर देता है।

१११ सेवक सोई जानिये—सचा सेवक उसी को समझना चाहिये जो मुसीबत मे भी साथ रहे। धूप में भी जैसे शरीर की छाया बिना परिवर्तन के सदा साथ रहती है।

११२ क्षमा खड्ग—जो क्षमा रूपी तलवार हाथ में लिये रहता है उस पर दुष्ट का क्या वस चल सकता है ? जैसे आग यदि तृण-रहित जगह पर पडी हो तो थोडी देर में आप ही आप बुझ जाती है।

११३ रस पोपै—रसिक और सन्त आदमी (विशेष तौर पर) प्रीति को वढाये विना ही रस (आनन्द) पैदा कर देते हैं। जैसे वसन्त ऋतु में विना वारिश के भी वृक्ष फूले फले रहते हैं।

११४ जहा सजन वहँ—जिस तरह जहाँ फूल है, वहीं सुगन्ध है और जहाँ सुगन्ध है वहीं भौरा है, उसी तरह जहाँ भला मनुष्य है, वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है वही सुख का स्थान है।

११५ अगम पथ है—प्रेम का मार्ग बडा अगम (कठिन) है। उसमें किसी प्रकार ही हकूमत नहीं चलती। देखो तीनो लोक के स्वामी श्रीकृष्ण महाराज (प्रेम मे फसकर) गोपियों के पीछे बन बन फिरते रहे।

११६ वचन रचन—कापुरुप=कायर पुरुप, डरपोक आदमी। कच्छप=कछुआ। दुर जाय=छिप जाते हैं।

डरपोक आदमी की वाक्य-रचना (वातें) कहे जाने पर एक क्षण भी नहीं ठहरती। जैसे कछुए के हाथ, पैर, मुख निकल निकल कर फिर छिप जाते हैं, स्थिर नहीं रहते।

११७ सरसुति के भंडार—सरस्वती (विद्या) के भंडार की बडी अनोखी वात है। ज्यों ज्यों इसे खर्च किया जाय त्यों त्यों वढता जाता है और विना खर्च घट जाता है। अर्थात् विद्या यदि दूसरे को दी जाय तो अपनी भी वढती जाती है और दूसरे को न दी जाय तो अपनी भी घट जाती है।

११८ एक एक सों—ससार में एक दूसरे का आपस में अन्न-जल का सम्बन्ध लगा रहता है जैसे चोली और दामन का साथ है ऐसे ही यह ससार एक ज़ंजीर में एक दूसरे के साथ बँधा है।

११९ चिदानद घट में—मृगमद=कस्तूरी।

जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी रहती है, परन्तु वह खुशबू को कहीं और ढूँढता फिरता है, ऐसे ही तू परमात्मा को कहाँ ढूँढता फिरता है; वह तो घट घट वासी है।

१२० सरस निरस—समय पाकर मनुष्य सरस (कान्तियुक्त) और निरस (कान्तिहीन) होता है, जैसे दिन मे सूर्य बहुत प्रकाश वाला होता है और चद्रमा की काति मद पड जाती है।

१२१ बाके रनतें होतु—रन=रण, गति।

बाकी गति से—टेढी गति से (टेढ़ेपन के कारण) सब लोग वदनीय (आदर पाने के योग्य) होते हैं। जिस तरह दूज के चद्रमा को हर कोई नमस्कार करता है, परन्तु पूर्णचद्र को कोई नमस्कार नहीं करता।

१२२ भेळ भले विधिना—दधि=उदधि, समुद्र।

विधि ने अच्छी-अच्छी वस्तु बनाई हैं, परन्तु सब मे कुछ न कुछ दोष डाल दिया है। जैसे कामधेनु को पशु, मनि को कठोर, समुद्र को खारा और चन्द्रमा को क्षीण होने वाला बनाया है।

१२३ यों निबाह सब जगत को—प्रेम-क्रोध, भलाई-बुराई करते हुए सारे ससार का निर्वाह होता जाता है। एक एक से लेता है और एक एक को देता है।

१२४ तृनहूँ ते—तूल=रुई। हरवो=हलका। आहि=होता है।

माँगने वाला तिनके और रुई से भी हलका (निस्सार) होता है (यदि वह इतना हलका है तो हवा उसे उडाती क्यों नहीं ? इसी

अमृत की धारा है *। ब्रह्मा के कमण्डलु को शोभित करने वाली* संसार के बन्धनों को काटने वाली और देवताओं का सर्वस्व है।

शिव सिर—मालतीमाल=मालती के फूलों की माला (मालती एक बेल का नाम है जिसका फूल सफ़ेद होता है)। भगीरथ नृपति पुण्य फल=भगीरथ राजा के पुण्य (तप) का फल। ऐरावत गज=ऐरावत हाथी (ऐरावत इन्द्र के हाथी का नाम है जिसका रंग सफ़ेद है)। गिरिपति=पर्वतों का राजा। हिमनग=हिमालय। कल=सुन्दर। कंठहार=गले की माला। सगरसुतन=सगर राजा के पुत्र (ये संख्या में साठ हजार कहे जाते हैं)। सठ सहस=साठ हजार। परस=स्पर्श छूना। उधारण=उद्धार करने वाली, तारने वाली। धरि=धारण करके। सागरसंचारण=समुद्र की ओर जाने वाली।

शिवजी के सिर पर मालती की माला के समान शोभा देती है। भगीरथ राजा के तप का फल है†, और ऐरावत हाथी के समान शुभ्र और पर्वतराज हिमालय के गले का सुन्दर हार है। (गङ्गा हिमालय पर्वत पर चक्कर लगाती हुई आती है इस लिए हार के समान ही प्रतीत होती है) सगर के साठ हजार पुत्रों को जल के स्पर्शमात्र से तारने वाली† है और अगणित धाराओं का रूप धारण करके समुद्र की ओर जाती है।

---

* (वामनावतार में विष्णु भगवान् का एक पैर ऊपर के सातों लोकों को मापता हुआ जब ब्रह्मलोक में पहुँचा तब ब्रह्मा जी ने उस को धोकर चरणामृत अपने कमण्डलु में रख लिया। इसी चरणामृत से पीछे गंगा का उद्गम हुआ)।

† त्रेता युग में सूर्यवंशियों में राजा सगर एक प्रसिद्ध राजा हुआ है। इसकी दो रानियाँ थीं। पहली से असमंजस नाम का एक पुत्र

काशी कहँ०—कहँ=को। ललकि=ललक कर, उत्कण्ठा से। भेंट्यो=मिली। धाई=दौड़कर। अकम=अकमें, गोदी में। छतरी=साधु महात्माओं की समाधि के स्थान पर स्मारक रूप से बना हुआ छज्जेदार मण्डप। मढी=छोटा देवालय। जोहत=देखते ही।

था, दूसरी से साठ हजार पुत्र हुए। एक बार सगर ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। ईर्ष्यावश इन्द्र ने यज्ञ का घोड़ा चुरा कर पाताल में जाकर कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। जब सगर के साठ हजार पुत्र घोड़े को ढूँढते हुए वहाँ पहुँचे तब उन्होंने घोड़ा वहाँ देखकर मुनि का अपमान किया। जिस पर क्रुद्ध होकर मुनि ने शाप द्वारा उनको भस्म कर दिया। उसके बाद सगर का पोता (असमजस का पुत्र) अंशुमान उन्हें ढूँढता हुआ वहाँ पहुँचा। अपने चाचाओं की यह दुर्दशा देखकर वह बड़ा दुःखी हुआ, और उनकी मुक्ति के लिए गरुड़ की अनुमति से उसने गंगा की धारा को पृथ्वी पर लाने के लिए तप प्रारम्भ किया परन्तु सफल नहीं हुआ। तब उसके पुत्र दिलीप ने पिता का अनुकरण किया पर वह भी गंगा को पृथ्वी पर न ला सका। उसके बाद दिलीप के पुत्र भगीरथ ने गोकरण तीर्थ पर घोर तपस्या करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और उनसे 'गंगा' तथा अपने लिए पुत्र माँगा। ब्रह्मा जी ने स्वीकृति दे दी पर प्रश्न यह था कि गंगा के प्रबल प्रवाह को पृथ्वी पर कौन सँभालेगा। इस लिए भगीरथ ने पुनः तप करके महादेवजी को इस काम के लिए प्रसन्न किया। ब्रह्मा के कमण्डलु से निकल कर गंगा बहुत दिन तक शिवजी के जटाजूट में घूमती रहीं। इसी के आधार पर 'भगीरथ' नृपति पुन्यफल' और 'शिव सिर मालती माल' कहा गया है। वहाँ से गंगा जी हिमालय पर आईं और वहाँ से भगीरथ इन्हें भूलोक पर लाया उसी गंगा की धार के स्पर्श से ही भगीरथ के पूर्वजों (सगर के ६० हजार पुत्रों) का उद्धार हुआ।

काशी को प्रिय जानकर बड़ी उत्कण्ठा से दौड़कर मिली है, कभी उसे स्वप्न में भी नहीं छोड़ा, सदा गोदी में ही लिपटी रही है। कहीं किनारे पर बँधे हुए नये घाट ऊँचे पहाड़ के समान सोहते हैं, कहीं छज्जेदार मण्डप और कहीं छोटे छोटे देवालय बने हुए हैं जो कि देखते ही मन को मोह लेते हैं।

धवल धाम—धवल=शुभ्र, सफ़ेद। धाम=घर, मन्दिर। फरहरत=फहराती। धुजा=लम्बा झण्डा जो मन्दिर आदि के ऊपर लगाया जाता है। पताका=झण्डियाँ। घहरत=गम्भीर शब्द करते हुए। धुनि=ध्वनि, शब्द। धमकत=धमाके का शब्द करता है, जोर से शब्द करता है। धौंसा=नगाड़ा। साका करि=रोबसे, जोर से। मधुरी=एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूंक कर बजाया जाता है। नौबत=नक्कारा। अथवा मधुरी नौबत का अर्थ मधुर नौबत भी किया जा सकता है।

चारों ओर सफेद मकान हैं जिनपर झण्डे और झण्डियाँ फहराती हैं। घंटेकी ध्वनि गम्भीर शब्द कर रही है और नगाड़े बड़े जोर से बज रहे हैं। मधुरी और नौबत बज रहे हैं (अथवा मधुर स्वर से नौबत बज रहे हैं) कहीं स्त्री पुरुष गा रहे हैं, कहीं ब्राह्मण वेद पढ़ रहे हैं और कहीं योगी जन ध्यान लगा रहे हैं।

कहुँ सुन्दरी—नहात=नहाती हुई। नीर=जल, पानी। कर जुगल=दोनों हाथों से। उछारत=उछालती हैं। जुग=युग, दो। अम्बुज=कमल। मुक्तगुच्छ=मोतियो के गुच्छे। सुच्छ=स्वच्छ। निकारत=निकालते हैं। बदन=मुख। करन=हाथों से। बारिधि=समुद्र। नाते=नाते से, सम्बन्ध से। ससि कलंक=चन्द्रमा का कलंक।

कहीं सुन्दरियाँ नहाती हुई दोनों हाथों से जल उछाल रही हैं मानो दो कमल मिलकर स्वच्छ मोतियों के गुच्छे निकाल रहे हैं। कहीं हाथों से मुँह धोती हुई स्त्रियाँ शोभा पा रही हैं। मानो समुद्र के नाते से कमल चन्द्र का कलंक मिटा रहा है। यद्यपि कमल और चन्द्र का विरोध है (चन्द्र के उदय होने पर कमल बंद हो जाते हैं) तो भी कमल जल में उत्पन्न होता है और चन्द्र भी समुद्र जल से उत्पन्न हुआ है इसलिए दोनों भाई हुए। सुन्दरियाँ हाथों से मुख धो रही हैं मानों हाथ-रूपी कमल मुखरूपी चन्द्र का कलंक मिटा रहे हैं।

सुन्दरि ससि मुख—नीर=जल। इमि=इस प्रकार। बेलि=बेल। लहलही=हरी भरी। कुसुमन=फूलों से। दीठी=दृष्टि। तितही=वहीं। ठहराई रहत=ठहरी रहती है, रुक जाती है।

सुन्दरियाँ अपने शशिमुख से जल के बीच इस प्रकार सोहती हैं जैसे हरी-भरी कमल की बेल नये पुष्पों से सब के मन को मोह लेती हैं। दृष्टि जहाँ जाती है वहीं अटक जाती है, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि गंगा की छवि का वर्णन नहीं किया जा सकता।

कालिन्दी-सुषमा

१ तरनि तनूजा तट तमाल—तरनि तनूजा=(तरनि) सूर्य की (तनूजा) लड़की, जमुना। तमाल=एक प्रकार का पेड़ जिसकी लकड़ी काले रंग की होती है। कूल=किनारा। मुकुर=दर्पण। लखत=देखते हैं। प्रणवत=प्रणाम करते हैं। पावन=पवित्र। आतप=धूप। वारन=हटाने को, बचाने को। सिमिटि=सिमिट कर, इकट्ठे हो कर। नै=झुके। निरखि=देखकर।

यमुना के किनारे बहुत से तमाल के सुन्दर पेड़ छाये हुए हैं।

वे किनारे पर झुके हुए शोभा पा रहे हैं, मानों जल को छूने के लिए ही वे इस प्रकार झुके हुए हैं, या उझक कर (देखने के लिए सिर आगे बढ़ाकर और झुककर) दर्पण में सब अपनी अपनी शोभा देख रहे हैं, या जल को बहुत पवित्र समझ कर फल पाने के लोभ से उसको प्रणाम कर रहे हैं। या किनारे की धूप को दूर करने के लिए सब इकट्ठे होकर छाये रहते हैं, या भगवान् की सेवा के लिए झुके हुए हैं, उनको देखकर आँखें और मन सुख प्राप्त करते हैं।

२ कहूँ तीर पर कमल—अमल=स्वच्छ । सैवालन=काई । दृग=आँखें । निरखत=देखती हैं। गोभा=कोंपल। टेरत=बुलाती हुई। उपचार=पूजा का सामान (धूप दीप नैवेद्य आदि)।

कहीं किनारे पर बहुत प्रकार के सुंदर कमल शोभित होरहे हैं, कहीं काई के बीच में कुमुदिनी की पंक्तियाँ लग रही हैं सो ऐसा मालूम पड़ता है, मानों यमुना अनेक आँखें धारण करके अपनी शोभा देख रही हैं, या प्रियतम और प्रिय के प्रेम की अनगिनत कोंपलें फूट रही हैं, अपने बहुत से हाथ बनाकर अपने प्रियतम को अपने पास बुलाती हुई वह शोभा पा रही हैं, या पूजा का सामान (धूप दीप नैवेद्य आदि) लेकर प्रिय-मिलन के लिए जाती हुई मन को मोह रही है।

३ कै पियपद उपमान—उपमान=जिससे उपमा दी जाय (प्राय चरणों की कमल से उपमा दी जाती है। भृंग=भौंरा। झलकत=दिखाती है। झाँई=परछाई। भाई=प्रकार धगरे=बिखरे, फैले। सतधा=सैकड़ों धाराओं में।

या इनको (कमलों को) प्यारे के चरणों के उपमान समझ अपने हृदय में धारण करती है, या (उन संहारते हुए)

भौंरो के बहाने अनेक मुख बनाकर स्तुति गान कर रही हैं (भौंरे जो गुनगुना रहे हैं वही मानो स्तुति गान है) या व्रज की स्त्रियों के मुखरूपी कमल की परछाई दिखाई देती है, या व्रज के भगवान् (कृष्ण भी विष्णु भगवान् के अवतार माने जाते हैं) के पैरों को छूने के लिए लक्ष्मी बहुत प्रकार शोभित हो रही हैं, कुमुदिनी सफ़ेद होती और कमल लाल ऐसे ही सतोगुण का रग सफ़ेद तथा अनुराग या प्रेम का रग लाल माना जाता है। सो इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि) या सात्विकता और प्रेम व्रजमडल मे बिखरे पड़े हैं, या उसे (व्रज को) लक्ष्मी का घर समझ कर इसीकारण (जमुना)सैंकड़ों धाराओ मे अपने जल को धारण करती है।

४ तिन पै जेहि छिन—राका=पूर्णमासी । अवनि=पृथ्वी मुकुर=दर्पण। आभा, कान्ति । जुडात=तृप्त होते हैं।

उन (कुमुदिनियों) पर जिस समय पूर्णमासी की रात की चन्द्रमा की चाँदनी छाती है, तब वह चाँदनी जल में मिलकर आकाश से पृथ्वी तक एक ताना तान देती है। तब सारी यमुना दर्पणमय हो जाती है और एक अत्यत उज्ज्वल कान्ति फैल जाती है। उस सुन्दर शोभा को देखकर शरीर मन और नेत्र प्रसन्न हो जाते हैं। वह कौन कवि है जो उस समय के जमुना के जल की शोभा का बखान कर सके। उस समय यमुना के किनारे की शोभा आकाश से पृथ्वी तक एक सी छायी रहती है।

५ परत चन्द्र प्रतिबिम्ब—प्रतिबिम्ब=परछाईं। लोल=चचल। लहि=पाकर । रासरमन=रास लीला । उर=हृदय।

कहीं चन्द्र की परछाहीं जल के बीच में पड़ती हुई चमक रही है। कभी चचल लहर पाकर चन्द्र का प्रतिबिम्ब नाचता-सा है, तो मन को बड़ा अच्छा प्रतीत होता है (जब जल में लहर उठ

रग तथा रस से युक्त हुआ, और सब से पहले जिसने अपनी विद्या का फल पा लिया था, अब वही भारत सब के पीछे दिखाई देता है, हाय, हाय, भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती।

२ जँह भये शाक्य—जहाँ शाक्य (गौतम बुद्ध), हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति* रामचन्द्र, युधिष्ठिर, वासुदेव (कृष्ण) तथा शर्याति (मनु महाराज के पुत्र का नाम था) हुए, जहाँ भीम, कर्ण और अर्जुन की वीरता दिखाई देती थी, वहाँ अब मूढ़ता, लडाई झगडा और अविद्यारूपी रात फैली हुई है। अब जहाँ देखो वहाँ दु ख ही दु ख दिखाई देता है, हाय ! हाय ! भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती।

३ लरि वैदिक जैन—वैदिक मतावलम्बियो और जैनियों ने लड़ कर सब पुस्तकें नष्ट कर दीं फिर (परस्पर) लडाई झगडा करके यवनों की भारी सेना को (कन्नौज के राजा जयचन्द ने) बुलाया। उस सेना ने बहुत बार हमारी बुद्धि, बल, धन, और विद्या को नष्ट किया। जिससे आलस्य, मूढता और पारस्परिक झगडे की अँधियारी छा गई है। अब तो सब अन्धे लगड़े हो गये हैं और दीन-हीन होकर रोते हैं, हाय ! हाय ! भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती।

---

* राजा नहुष अयोध्या के इक्ष्वाकु वंश का बड़ा प्रतापी राजा था, इसने अपने प्रताप से इन्द्रपद पाया था। इसकी कहानी ७५ पृष्ठ पर देखिये। नहुष के पुत्र का नाम ययाति था यह भी पिता जैसा पराक्रमी था, इसका विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से हुआ था। इसके चार पुत्र थे, जिनमें यदु और पुरु प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम से यादव और पौरव वंश प्रारम्भ हुए।

४ अंगरेज राज—अगरेजों के राज्य में सब तरह के सुख के सामान मौजूद हैं, परन्तु सब धन विदेश में चला जाता है, यही सबसे बडी ख्वारी (खराबी, बरबादी) है। हाय ! उस पर भी मँहगी, अकाल और बीमारी फैलाकर परमात्मा दिन दिन दूना दुःख दे रहे हैं। और इन सब के भी ऊपर टैक्स की आफ़त आई है, हाय ! हाय ! भारत की दुर्दशा देखी नहीं जाती।

कोमल भावना

रहे क्यों—इनारुनि=इन्द्रायण फल, यह मुलतान, डेरागाजीखाँ और सिंघ में बहुत ज़्यादा होता है। इस का रंग बड़ा सुन्दर पीला और लाल होता है, पर खाने में कडवा और विषैला होता है।

एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं? जिन नयनों में हरि-रस छाया हुआ है, उन्हें दूसरा कैसे पसन्द आ सकता है ? जिस शरीर और मनमें मनमोहन कृष्ण रम रहे हैं वहाँ ज्ञान किस तरह आ सकता है ? चाहे जितनी भी बातें बनाओ यहाँ कौन है जो विश्वास कर सके ? अमृत चखकर अब इनारुनों को देख कर कौन ऐसा मूर्ख है जो भूल जाय? हरिश्चन्द्र कहते हैं प्रेम तो केले के पेड के जगल के सामान है जो इसको काटो तभी फिर फलेगा (फलियाँ तोड लेने के बाद केले का पेड काट दिया जाता है, तब वह फिर बढता है, और फिर उसमें फल लगते हैं)

निराशा

१ सब भांति—इस भारत से दैव सब प्रकार से प्रतिकूल हो गया है, अब इसका नाश अवश्य होगा, हे वीरवर, अब इस की सब आशा छोड दो। अब यहाँ सुख-रूपी सूरज का उदय

होगा। वे (अच्छे) दिन अब यहाँ सपनेमें भी नहीं आयँगे। इसकी स्वतन्त्रता, बल, धीरज सब नष्ट हो जायगा। कल्याणयुक्त भारत की भूमि अब श्मशान हो जावेगी। अब चारो ओर दुःखही दुःख दिखाई देंगे, इसलिए हे वीरवर! अब भारत की आशा छोड दो।

२ इत कलह विरोध—यहाँ लडाई झगडा ही सब के हृदय में घर कर लेगा, अर्थात् सब लडाई झगडे में लगे रहेंगे, मूर्खता का अन्धकार चारों ओर फैल जावेगा। वीरता, एकता और ममता (प्रेम) सब दूर चली जायँगी। उद्यम को छोडकर सब सदावृत्ति का अनुसरण करेंगे, (सब नौकरी के पीछे दौड़ेंगे)—और गुलाम होकर चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) शूद्र ही हो जायँगे इसलिए हे वीरवर, अब भारत की सब आशा छोड दो।

३ ह्वै हैं इतके—यहाँ के (भारत के सब निवासी, भूतों और पिशाचोंके उपासक हो जावेंगे और कोई-कोई स्वय ही प्रकासी (धर्म प्रकाश करने वाला, अवतार) वन बैठेंगे। सब सनातन सत्य धर्म नष्ट हो जावेंगे, और अपने परमात्मा से सब भारतवासी विमुख होजावेंगे। सुपथ (सन्मार्ग) को छोडकर सब लोग कुमार्गमें चलने लगेंगे, अतएव हे वीरवर, अब भारत की आशा छोड दो!

४ अपनी वस्तुन—अपनी वस्तुओं को सब लोग पराई समझेंगे अपनी चाल छोडकर दूसरों की चाल की (नक़ल) दौडकर करेंगे। तुरको (मुसलमानो) के लिए हिन्दू हिन्दुओं के संग लडाई करेंगे और म्लेच्छों (मुसलमानों) के पैरों पर अपने सिर चढाते रहेंगे। अपना कुल छोडकर सब नीचों के सग रहेंगे, हे वीरवर! अब भारत की आशा छोड दो।

५ रहे हमहुँ कबहुँ—हम भी कभी स्वतन्त्र आर्य और बलशाली थे, यह बात सब अपने दिल से भुला बैठेंगे, मिटा देंगे। परमात्मा से विमुख, धर्म और धन तथा बल से हीन, दुखी आलसी, दुर्बल

शरीर वाले और भूखे लोग डर कर यवनों के जूते सिर पर सुख से सहेंगे, उनकी गुलामी करेंगे। हे वीरवर! अब भारत की सब आशा छोड दो"।

सूक्तिसुमन

१ प्रारम्भ हो०—नीच लोग विघ्न के भय से उद्यम आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम लोग कार्य आरम्भ तो कर देते हैं पर किसी विघ्न के आने पर उसे बीच में ही छोड देते हैं। परन्तु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे विघ्नों पर लात रखकर अर्थात् उनकी कुछ परवाह न कर निरन्तर उद्यम करते हुए अन्त तक काम को पूरा निभाते हैं।

२ का सेसहि०—दिवसमनि=सूर्य। सुकृति=भले आदमी। क्या शेषनाग के सिर पर भार नहीं है? परन्तु वह उसे गिरा नहीं देता। क्या दिवसमनि [रात दिन] चलते-चलते थक नहीं जाता? पर वह कभी रुकता नहीं। सज्जन जिसको स्वीकार कर लेते हैं [जिसको अपनी शरण में लेते हैं] उसका अन्त तक हित ही करते हैं। भले आदमियों का यही नियम है, अपने हृदय में इसका विचार कीजिए।

३ जो दूजे को०—जो राजा दूसरे का हित करने में लगा है वह अपना काम गँवा बैठता है। जब अपना ही काम पूरा न हुआ तो राज्य किस काम का? जो दूसरे के ही हित में लगा रहे वह पराधीन और मूढ है उस मूर्ख को कठपुतली के समान स्वाद (आनन्द) कभी नहीं मिलता।

लक्ष्मी

कूर सदा०—कूर=मूर्ख । भाखति=कहती है । लखति=देखती है । भीरु=डरपोक । रतिहीन=प्रेमरहित । वारनारी=वेश्या ।

चचल स्वभाव वाली लक्ष्मी स्वामी को सदा (मूर्ख) कहती है। मनुष्य के गुण-अवगुण को वह नहीं देखती, सज्जन और दुष्ट—सब को एक जैसा समझती है । शूरवीर से डरती है और भीरु (डरपोक) को कुछ गिनती ही नहीं, बताओ प्रेम रहित वेश्या और लक्ष्मी को किसने वश में किया है ?

गुरुवश्यता

जब लौं बिगारे०—जब तक शिष्य कार्य नहीं बिगाड़ता तब तक गुरु उसे कुछ नहीं कहता पर शिष्य बुरे रास्ते पर जाने लगे तो गुरु उसके सिर पर अकुश के समान होजाता है। अर्थात् उस को उस कार्य से रोकता है । इसलिए गुरु के वाक्य के वशवर्ती होने के कारण हम सदा ही पराधीन हैं । निर्लोभ गुरु के समान सन्तजन ही जगत में स्वाधीन हैं ।

शारदी सुषमा

सरद विमल—निशानाथ=चन्द्रमा । सेत=श्वेत, सफ़ेद । सरन में=तालाबों में । लखौ=देखो । किधौं=अथवा । नवबाल=नवयुवती । बसन=वस्त्र । उडगन=तारे ।

विमल शरद् ऋतु शोभित हो रही है आकाश स्वच्छ नीला है, सोलह कला-युक्त पूर्ण चन्द्रमा उदित है । सुन्दर

चमेली के फूलों की सुगंध फैल रही है । नदी के किनारे सफ़ेद सफ़ेद बहुत से कास के फूल खिले हैं। कमल और कुमुदिनी तालाबों में खिले हुए शोभा पा रहे हैं । जिस पर गूँज-गूँज कर भौंरों के झुण्ड रस ले रहे हैं । चाँदनी ही कपड़े हैं, चन्द्रमा ही मुख है, तारागण मोतियों की माला के समान है, कास फूल ही मधुर मुसकान हैं, यह शरद् ऋतु है या कोई नव-युवती है।

अहो यह०—कास= (एक प्रकार की घास का फूल—जिसका रंग बिलकुल सफ़ेद होता है और जो शरत् ऋतु में ही खिलता है) । रजित=रंगी हुई । कुसुम=फूल । धवलाई=सफ़ेद ।

अहो यह शरद्-ऋतु शंभु(महादेवजी) का रूप धारण करके आई है। (महादेव जी अपने शरीर पर भस्म रमाये रहते हैं)—शरद्-ऋतु में चारों ओर जो कास-फूल खिले हैं वही मानों अंगों में लगाई हुई भस्म है । आकाश में जो चन्द्रमा उदय हुआ है वही मानों महादेवजी के सिर का आभूषण है (महादेवजी ने मस्तक में चन्द्रमा को धारण किया हुआ है) आकाश में चन्द्र की किरणों से रजित कहीं-कहीं जो बादलों की टुकड़ियाँ हैं वही मानों हाथी की खाल है जिसे महादेव जी ओढ़ते हैं। जो अति शुभ्र खिले हुए फूल हैं वे ही मानो महादेव जी के गले की मुंडमाला है । और राजहंसों की पंक्ति ही मानों महादेवजी का हास्य है ।(कवि लोग हास्य का रंग शुभ्र वर्णन करते हैं) इस प्रकार यह शरद्-ऋतु महादेव जी का रूप धारण करके आई है।

सेवा धर्म

नृपसों०—विट=धूर्त, खुशामदी। श्वान-वृत्ति=कुत्ते की वृत्ति। राजा से, मन्त्री से और सब दरबारियों से डरते रहना होता है। फिर राजा के आस-पास के (मुँह लगे) खुशामदियों का कहना मानना होता है। रात-दिन उनका मुख देखते ही बीतता है और प्राणों का सदा डर लगा रहता है। इसलिए अपना पेट भरने के लिए की गई नौकरी कुत्तों की वृत्ति के समान है।

सेवक प्रभु०—सेवक सदा स्वामी से डरते रहते हैं, पराधीन लोगों को सपने में भी सुख नहीं है, जो ऊँचे राजकर्मचारी हैं उनको मन ही मन बड़ा भय रहता है, क्योंकि-सब ही बड़े लोगों से द्वेष करते हैं और दिन-रात स्वामी के कान भरते रहते हैं।

जिमि जे०—बिलगाहिं=अलग होते हैं।

जिस तरह जो जन्मते हैं उनकी मृत्यु तथा जो मिलते हैं उनका वियोग भी निश्चित है इसी तरह जो बहुत ऊंचा चढते हैं उनका पतन भी अवश्य होता है।

पुराना उद्यान

राजा नंद का स्वामिभक्त मंत्री राक्षस नंद कुल के नष्ट हो जाने पर राजा नंद के पुराने उद्यान का वर्णन कर रहा है।

नसे विपुल०—नसे=नष्ट हो गये। विपुल=बड़ा, भारी। हिय=हृदय। ताल=तालाब। भे=हो गये। लोपी=घिर गई, छिप गई। लहि=प्राप्त करके।

राजा (नंद) के भारी परिवार के समान बड़े-बड़े घर नष्ट हो गये हैं। मित्र-नाश से जिस तरह साधुओं के हृदय सूख जाते हैं वैसे यह तालाब सूख गये हैं। प्रारब्ध के विपरीत होने पर जिस तरह नीति फलहीन (विफल) हो जाती है, वैसे ही ये वृक्ष

फलहीन हो गये हैं। मूर्ख की बुद्धि जैसे कुनीति से घिर जाती है वैसे ही घास-फूस से यह जमीन घिर गई है।

तीछन परसु०—तीछन=तीक्ष्ण, तेज। परसु=कुल्हाडा। तरोवर=(तरुवर) वृक्ष। गात=शरीर। अहि=साँप। उसास लेत=ठंडी साँस लेते हैं, आहें भरते हैं।

तीक्ष्ण कुल्हाड़े के प्रहार से कटे हुए शरीर वाले तथा पिंडुक (एक पक्षी पेंडकी) के साथ मिलकर रोते हुए वृक्षों के घाव दिखाई दे रहे हैं।) वृक्षों के खोढरे में से कीडों के बोलने का जो शब्द निकलता है वही मानों वृक्ष रोते हैं और उन वृक्षों पर जो पेंड बोलती है वही मानो रोने में वृक्षों का साथ देती है) अपने मित्र अर्थात् वृक्षों को दुःखी देख साँप आहें भरते हैं और काहे के बहाने से उनके घावों पर अपनी केंचुली धरते हैं।

तरुगन०—वृक्षों का हृदय (भीतरी अंश) सूख गया है, कीडों के काटने से उनके शरीर में बहुत से छिद्र हो गये हैं (जिनमें उनका रस आँसू के समान बह रहा) और पत्र, फल तथा छाया के न होने से वे दुःखी हैं मानों सब श्मशान को जारहे हैं।

उद्बोधन

जागो जागो—हे भाई जागो, जागो। तुमने रात में सोते-सोते ही सारी उमर गँवा दी। रात की कौन कहे अब तो दिन भी बीत गया; और कालरात्रि (मृत्यु की रात) आ गई है। अब भला बुरा कुछ नहीं दिखाई देता, अब तो शत्रु के बस आ पड़े हो। आगे अपने उद्धार का रास्ता नहीं सूझता, इसलिए सिर धुन कर पछताते हो। अब भी होश में आकर, जो बची खुची बड़ाई है उसी को क्यों नहीं सम्हालते? फिर पछताने पर कुछ नहीं होगा, खाली मुँह बाये रह जाओगे।

बदरीनारायण चौधरी

विजयी भारत

जय जय भारतभूमि—भवानी=दुर्गा । अलका=यक्षराज कुबेर की पुरी। अमरावती=देवताओं की पुरी, इन्द्रपुरी। खिसानी=लज्जित हो गई । सूर=सूर्य। उदो=उदय।

भारतभूमिरूपि भवानी की जय हो। जिसकी यशरूपी पताका संसार की दसों दिशाओं में फैली हुई है। जो सब सामग्रियों से भरी-पूरी है, और जो सब ऋतुओं में एक समान सुन्दर रहती है जिसकी शोभा को देख कर देवपुरी और कुबेरपुरी भी लज्जित हो गई। जहाँ धर्मरूपी सूर्य उदय हुआ और जहाँ सब से पहले नीती पहचानी गई।

सकल कला—सुझाना=दिखाना, बताना। निबुध=विद्वान। न्याय-निरत=न्याय में लगे हुए।

'जहाँ से सम्पूर्ण कलाओं और गुणों सहित सभ्यता सब (दूसरे देशों) को सुझाई गई, (दिखाई गई) जहाँ अनगिनत योगी, तपस्वी, श्रेष्ठ ऋषि मुनि तथा ज्ञानी और विद्वान ब्राह्मण हुए जिनसे जगत ने विज्ञान और सब विद्याएँ जानी। और जहाँ कभी सारे संसार को जीतने वाले, न्याय मे रत तथा गुण की खान राजा थे—

जिन प्रताप—खिलानी=छिप गई। रत वनिक=व्यापार में लगे हुए। बनिक=बनिया, वैश्य।

जिनके प्रताप से देवताओं और असुरों की भी हिम्मत पस्त हो गई। जहाँ के अभिमानी क्षत्रिय काल के समान (बलवान) शत्रुओं को भी तिनके की तरह समझते थे। जहाँ लाखों वीरों की स्त्रियाँ, विद्वानों की माताएँ, तथा चतुर और सती स्त्रियाँ

थीं। जहाँ करोडों करोडपति, धन दान करने वाले व्यापारी व्यापार में लगे रहते थे—

सेवत शिल्प—प्रधानी=तृप्त हो गई। खोटानी=कम हुई।

जहाँ के शूद्रों ने शिल्प-कार्य में लग कर तथा (उच्च वर्णों की) यथोचित सेवा करके समृद्धि को बढाया था। जिस देश के अन्न को खाकर ससार ऐंठता है, और अनेक जातियाँ तृप्त हो गई हैं, जिसकी सम्पत्ति हज़ारों बरस लुटने पर भी कम नहीं हुई, हज़ारों बरस नित नये दु ख सहते हुए भी जिसने हृदय में दु ख न माना—

धन्य धन्य—सकानी=दुखती है। बहुरि=दुबारा। प्रेमघन=कवि का उपनाम।

वह देश धन्य है जो पहले की तरह अब भी ससार के राजाओं के मन को लुभा रहा है। जिसको अब भी तीस करोड आदमी दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। जहाँ के लोगों में एकता की झलक देखकर ससार की अक्ल सहम और डर जाती है 'प्रेमघन' कहते हैं कि वह ईश्वर की कृपा को प्राप्त कर फिर वैसे ही शोभा वाला हो जाय तथा वैसा ही शूरता और गुणों से युक्त होकर धनधाम से भरपूर हो जाय।

नाथूराम शंकर

मंगल कामना

१ द्विज वेद पढ़ें—द्विज=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य। अविरुद्ध=विरोध रहित, मेल मिलाप से। ऋजु=सरल। वसुधा=पृथ्वी। ध्रुव=अचल। सविता=प्रकाशमान।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद पढ़ें उनके मन में अच्छे विचार बढ़ें, सब लोग बल पाकर ऊपर चढ़ें (उन्नत हों) और मेल-मिलाप से रहें तथा सरल मार्ग को पकड़ें (टेढ़े रास्ते को छोड़ दें) पृथ्वी भर को अपना परिवार समझें। अचल धर्म को धारण करें, दूसरे के दु:खों को दूर करें, शरीर त्याग कर भवसागर से पार हो जायँ। हे सविता (प्रकाशमान) पिता, हमें वर दो और हमारे दिन फेर दो तथा कविशंकर को कविता दो (उसे प्रवीण कवि बना दो)।

२ विदुषी उपजें—विदुषियाँ उत्पन्न हों, वे क्षमता (सहनशीलता) न छोड़ें और व्रत धारण कर धर्मात्मा पति प्राप्त करें। मूल पुस्तक में 'तजैं सुकृती वरको' पाठ है जो अशुद्ध है उसके स्थान पर 'भजैं सुकृती वरको' पाठ चाहिए। सधवा सुखी रहें जायँ, और विधवाओं का उद्धार हो वे (पापाचरण द्वारा) किसी घर को कलंकित न करें। कन्यायें बिकें नहीं, कुटनियाँ न रहें और कुलघोर निकाल दिए जायँ और दर दर तरसते रहें। हे सविता पिता,

३ नृप नीति जगे—लचना=लचकना, नम्र हो जाना। समर=लड़ाई। सुरभि=गौ।

राजाओं को नीति उत्पन्न हो उनको अन्याय न ठगने पाय, प्रजाधर (प्रजापति राजा) को भ्रमरूपी भूत न चिपटें, परस्पर में झगड़े न मचें, दुर्जन नम्र हो जाँय। वीर मदमस्त होकर (व्यर्थ ही) लड़ाई न करते रहें। गौवें न कटें और अनाज न घट जाय, सुख भोग बढ़ें, और डर को दबा दें, दूर कर दें। हे सविता पिता, ।

४ महिमा उमड़े—लघुता=नीचता। जड़ता=मूर्खता। शठता=दुष्टता। सटकना=चपत हो जाना। मुदिता=प्रसन्नता, आनन्द, हर्ष।

महिमा बढ़े और नीचता तंग न करे, मूर्खता चराचर को जकड़े नहीं, दुष्टता चपत हो जाय, आनन्द बढ़े और प्रतिभा (प्रतिभाशाली) उचित आदर के लिए भटकता न फिरे। सुन्दर शुभकर्म की ज्योति प्रकट हो, और लक्ष्मी श्रमी के हाथ को पकड़े (मज़दूर धनी हों)। हे सविता पिता, ।

५ मत जाल जलें—मत्सर=ईर्षा। अघदम्भ=पाप-कपट। फलें=सजें। सुरपादप=कल्पवृक्ष, जो माँगने पर सब कुछ देता है। अक्षर=अविनाशी, परमात्मा।

मतों (मज़हबों) का जाल जल जाय, छली लोग किसी को न छलें, ईर्षा द्वेष छोड़कर कुल फूलें फलें, पाप-कपट दब जाय, गुनी-मानी निरक्षर (मूर्ख मनुष्य) के सामने न झुकें—अर्थात् धन की आशा से गुनी मानी न दबें। और कल्पवृक्षके समान तुम अविनाशी परमात्मा को जप से स्मरण करें और तप द्वारा देखें और प्राप्त करें। हे सविता पिता, ।

तरह परीक्षा के झंझटों में नहीं पड़ा था अर्थात् मैंने कोई परीक्षा पास नहीं की थी।

३ जीवन का—कुलीन=अच्छे वंश का। निहार=देख।
पूज्य पिता जी अपने जीवन का पूरा फल—सब तरह के सुख आदि—पा चुके थे और सब शुभ कार्यों को कर के वे जनता द्वारा कुलीन कहलाये जा चुके थे। स्वर्ग के समान सुन्दर भोग-विलासों को वे छोड़ चुके थे हम सब उनके न भूलने वाले जीवन का अन्त देख चुके थे।

४ बाँध बाप की—परमाधार=केवल एक सहारा। निरंकुश=स्वच्छन्द।

पिता जी की मृत्यु के बाद उनकी पगड़ी बाँधकर मैं सारे घर का मुखिया बना। सारे कुटुम्ब का मैं ही अब केवल सहारा था। परन्तु मैं अब भी पहले की भाँति ही सुख से स्वच्छन्द तथा निश्चिन्त रहता था (जैसे कि पिता जी के समय में रहता था) घर में कौन क्या करता है इस ओर मैं कुछ ध्यान न देता और किसी से कुछ न कहता था।

५ जिनका सचित—संचित=इकट्ठा कियाहुआ। होड़=बाज़ी।
जिन पिता जी का इकट्ठा किया हुआ खजाना मैंने स्वयं खाया और दूसरों को खिलाया उनके समान धन-संग्रह करने में मैंने तनिक भी बाज़ी न लगाई (प्रयत्न नहीं किया)। अर्थात् मैं खर्च तो करता गया पर कुछ कमा न सका। कई लोग हित-चिंतक से बनकर मुझे लूट रहे थे पर मैं उनकी धोखे की चालों को पहचान न सका, फल यह हुआ कि मुझे घाटा पड़ गया पर मैं उसका कठोर परिणाम फल भी न समझ सका।

६ अटके डिगरीदार—अटके=अड गये, सवार हो गये। निरुपाधि=उपाधि रहित।

जिनको कचहरियों से डिगरियाँ मिल गई थीं वे अब मेरे सिर पर सवार हो गये, उन्होने अपना एक पैसा भी न छोडा और मेरा गाँव, धन, घर, बाग बगीचा सब छीन ले गये, मेरे कुटुम्ब में किसी के पास कोई गहना या वस्त्र भी न छोडा। अब नाम के साथ पिता जी के समय की उपाधि न रही अत पुलिस ने मेरे यहाँ से अस्त्र भी ले लिये।

७ बैठ रहे मुखमोड़—दुर्वाद=गालियाँ, निन्दा। अडी पर मरने वाले=जरूरत के वक्त पर किसी तरह भी काम कर देनेवाले।

रोज के आने जाने वाले मित्र मुख मोडकर घर बैठ रहे। अब तक जो हितू बनकर मुझे लूट रहे थे अब मेरा नमस्कार तक स्वीकार नहीं करते—देखते हैं और मुँह फेर लेते हैं। बडी बडी ठकुरसुहाती (प्रशसा) करने वाले अब गालियाँ देते हैं। जो लोग पहले जरूरत के वक्त पर किसी तरह भी कामकर देनेवाले थे वे अब बिना किसी बात के ही झट झगडे पर उतर आते हैं।

८ कविता प्रेमी—विज्ञान गगन=ज्ञान का आकाश। विज्ञ=विद्वान्। धर्म-धुरन्धर=धर्म के जानने वाले। रवि=सूर्य।

कविता के प्रेमी जन अब मुझे अच्छा कवि कहने में कतराते हैं, विद्वान् लोगों ने मुझे ज्ञान-रूपी आकाश का सूर्य कहना छोड दिया है, धर्म-धुरन्धर लोग मुझे माननीय नहीं समझते अर्थात् जब तक मेरे पास धन था तब तक मैं एक तुकबन्दी भी लिख देता तो लोग मुझे महाकवि कहते थे पर अब धन नहीं रहा अतएव अब कोई मुझे कवि या ज्ञानी नहीं कहता। धनी हो या निर्धन सभी मुझे तो कगाल कहते हैं।

किसी पदार्थ का परिणाम नष्ट हो जाय। प्रतिकार=बदला, वह कार्य्य जो किसी कार्य्य को रोकने, दबाने अथवा बदला चुकाने के लिए किया जाय। उष्ण विलास=गरमी लाने वाला सामान। ठौर=स्थान।

अब जाडे से बचाने वाला गरमी का सामान—गरम कपड़ा आग इत्यादि—नहीं मिलता तथा कठोर गरमी के प्रभाव से बचने के लिए ठंडी जगह पर रहना नहीं मिलता। बरसात चारो ओर से घेर रही है (यह खँडहर सब ओर से चू रही है) अतः कहीं भी सूखा स्थान नहीं मिलता। और इस खंडहर को छोडकर अब और तो कोई घर है ही नहीं।

१७. कर कर के हरि—केहरिनाद=सिंह की गर्जना। बलाहक=बादल। अस्थिर=चचल। विद्युत=बिजली। त्राण=रक्षा।

बादल सिंह के समान दहाड दहाड कर बरस रहे हैं, बिजली की चचल छटा दसों दिशाओं में दिखाई दे रही है। छेद (छिद्र) छत से गदला पानी छोड रहे हैं, अर्थात् छत के छिद्रों से मैला पानी चू रहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र देव आज रक्षा के सब उपाय नष्ट कर रहे हैं।

१८ दिया जले किस—कुटिया मे अँधेरा है, दिया किस भाँति जलाया जाय तेल के लिए पैसे तो हैं ही नहीं, उधर मच्छर और डाँस काट रहे हैं जिनके मारे ज़रा भी चैन नहीं पडती। मेंह इस जोर से बरस रहा है कि यदि दीवारें टूट कर गिर पडें तो कुछ ताज्जुब नहीं, सब ओर पानी ही पानी न हो जाय तो वर्षा क्या हुई ?

१६ बीत गई अब रात—किसी प्रकार रात तो व्यतीत हुई

है, और अँधेरा तो दूर हुआ परन्तु कष्टों का समूह अब भी चकनाचूर नहीं हुआ, वह वैसे का वैसा ही बना है। तीसरा दिन आ गया है पर इस भयानक उपवास की समाप्ति नहीं हुई, यह भूख-हड़ताल चली ही जा रही है, हा! हमारा निवास तो साक्षात् घोर नरक में ही हो गया है।

२०. जो जगती पर—जगती=पृथ्वी।

जो इस धरातल पर पाप के बीज बोने का साहस नहीं कर सकता, जिसकी आत्मा में सच्चे धर्म को छोड़ने का साहस नहीं है, जो भाग्य के विरुद्ध एक पग भी नहीं चल सकता, ऐसा निर्धन प्राणी कब तक रो रोकर बच रहेगा? अर्थात् उसे शीघ्र ही मरना पड़ेगा।

आत्मबोध

१ पठ पाठ प्रचण्ड—प्रमाद=आलस्य। रोप=छेड़, ठान।

शंकर कवि कहते हैं कि कई कपटी मनुष्य घोर आलस्य तथा कपट से भरे पाठ पढ़-पढ़ कर अपना जन्म गँवा गये तथा कई बलवान् पुरुष (बल के गर्व से जान बूझ कर) आपस में घोर लड़ाई ठान कर केवल पाप कमा गये हैं। न जाने कितने धनी पुरुष अन्त में सब सम्पत्ति धन आदि इसी धरातल पर छोड़ कर अनन्त के गर्भ में समा गये परन्तु जो निर्मल आत्मा थे, ज्ञानी थे, वे ही (इस संसार में) अपने मनोरथ की पूर्णता की जड़ जमा गये अर्थात् वे ही अपने मनोरथ पूरे कर गये। सारांश यह है कि पुस्तकों का स्वाध्याय, धन, बल आदि कुछ नहीं कर सकता जब तक आचरण शुद्ध और पवित्र न हो ज्ञान न हो।

२ उपदेश अनेक—अनेक उपदेश सुने हैं और मन को अपनी ही इच्छा के अनुसार सुधार चुके हैं। ध्यान धर कर एकाग्रचित्त होकर मन्त्रों का विधि पूर्वक जाप भी किया है, वेद और पुराणों को भी खूब मथ चुके हैं। गुरु के पद को धारण कर (किसी मठ) के महन्त भी बन चुके और अपना धन, घर तथा कुटुम्ब सब छोड चुके तथा चारों ओर टक्करें भी मार चुके हैं पर फिर भी (इस भवसागर से) ज्ञान के बिना तर न सके।

३ निगमागम सब—निगमागम=वेद-शास्त्र। प्रतिवाद=विरोध। प्रगल्भ=चतुर। दम्भ=छल-कपट। वचक=धोखे-बाज। प्रमाद=आलस्य। सुरा=शराब। हलाहल=घोर विष। महोदधि= समुद्र। विवेक=ज्ञान। वकराज=बगुले की तरह धूर्त्त, अर्थात् धूर्त्तराज।

वेद, शास्त्र तथा पुराण सब पढ बैठे हैं और दूसरों के खण्डन में चतुर कहे जाते हैं। अनेक छल-कपट रच कर तथा उनका प्रचार कर धोखेबाज बनकर कई वेश बनाते हैं। आलस्यरूपी शराब पीकर (मतवाले होकर) विचरते हैं, तथा अभिमान-रूपी जहर खाकर मर चुके हैं, शंकर कवि कहते हैं कि ऐसे धूर्तराज ज्ञान के बिना मोहसागर के पार नहीं हो सकते।

४ घरबार बिसार—बिसार=छोड़कर। अनन्य=अद्वितीय। कुपंथ=बुरा रास्ता। उतपात=कष्ट।

घर-बार छोड़ कर विरक्त बने हैं और सन्यासी का ... कर ये हमेशा मस्त रहते हैं, (इनको बडा

कर) अनेक मूर्ख गृहस्थी भक्त बनकर इनकी बकवास (उपदेश) सुनते हैं और धूर्त शिष्यजन इन्हें अद्वितीय पण्डित कहते हैं। ये कुल के नाशक घमंड-रूपी घोर जगल में घुमकर विचरते हैं तथा बुरे मार्ग का अवलम्बन करते हैं। शंकर कवि कहत हैं कि इस तरह एक ज्ञान के बिना ये कपटी लोग अनेक कष्ट उठाते हैं।

५ तन सुन्दर—उपहास=हंसी, अनादर। प्रतिकूल=विरुद्ध। मनोज=कामदेव। उपभोग=सुख को सामग्री।

चाहे शरीर सुन्दर और रोग-रहित हो, मन में त्याग के भाव हों और वह कभी उदास न होता हो, सुख में हमेशा धर्मचर्चा रहे और मनुष्य समाज में अनादर न हो अर्थात् प्रतिष्ठा हो, धन भी काफ़ी हो और अनुचित काम-वासना भी न हो परन्तु यदि किसी मनुष्य में चतुरता तथा प्रतिभा—तीक्ष्ण बुद्धि—न हो तो ये सब सुख की सामग्री व्यर्थ है।

६ दिन रात समोद—किरीट=मुकुट। अवनी=पृथ्वी। अधिराज=स्वामी।

चाहे दिन-रात खुशी तथा खेल में बीतें, हर तरह के राग-रंग तथा सुख-सामग्री मौजूद हों, सिर पर मुकुट तथा (हाथमें) तलवार धारण कर समस्त पृथ्वी के मालिक बन चुके हों और प्रताप अखण्ड हो तथा अनेक समाज (प्रजामण्डल) अविरुद्ध बन जायें (अर्थात् विरोधी न हों—आज्ञाकारी हो) परन्तु कवि शंकर कहते हैं कि ज्ञानरूपी धन के सिवाय कोई चीज़ इस संसार रूपी-सागर का जहाज़ नहीं बनती अर्थात् ज्ञान के बिना इस सागर से पार नहीं जाया जा सकता।

श्रीधर पाठक

उजड़ा गाँव

कबहूँ—वहाँ (उस उजड़े गाँव में), अब ग्रामीण जन आकर कभी पैर न रक्खेंगे, और मधुर भुलावे में पड़कर प्रतिदिन अपनी चिंताओ को न भुलावेंगे। अब वहाँ आकर किसान अपना समाचार न सुनावेंगे और न नाई की बातें ही सबके मन को बहलायेंगी। लकडी काटने वालों का बिरहा (एक प्रकार का गीत जिसे लकडी काटने वाले, और गडरिए गाते हैं) अब वहाँ कभी भी सुनाई न देगा और कानों को आनद देने वाली तान (सगीत) का समुद्र अब वहाँ कभी भी न उमरेगा। माथा (माथे का पसीना) पोंछकर लोहार अब वहाँ काम के लिए नहीं रुकेगा, और भारी भार को ढीलाकर बातें सुनने के लिए नहीं झुकेगा।

झाग उठे हुए प्याले को सब के पास फिराता हुआ (सब को पीने को देता हुआ) घर का मालिक अब वहाँ न दिखाई देगा। चाहे धनी लोग हँसी ठट्ठा करें और दीनो की सपत्ति को तुच्छ समझकर मानी लोग चाहे उसे नीची निगाह से देखें, परन्तु मुझे वह (ग्रामीण जीवन) बहुत प्यारा लगता है, सब तरह की बनावटों (कृत्रिमताओ) की अपेक्षा एक स्वाभाविक सुन्दरता ही मेरे मन को अधिक अच्छी लगती है।

जादूभरी थैली

कवि काश्मीर की सुन्दरता देखकर मुग्ध हो गया है, और उसी का इस कविता में वर्णन करता है।

क्या यह ससार को (बनाने वाले) बाजीगर की जादूभरी है, जो कि खेलते खेलते (खेल दिखाते दिखाते) खुल कर

पहाड़ के सिर पर फैल गई है। या सनातन पुरुष और प्रकृति को यौवन रस (यौवन की मस्ती, सभोग की इच्छा) आया तब उन्होंने केली-क्रीडा करने और रसरंग रचने के लिये यह रंगमहल सजाया है। यह प्रकृति महारानी के महलों की खिली हुई फुलवारी है, या उस (प्रकृति महारानी) की (रत्नों से) भरी हुई सिंगारपिटारी खुली पड़ी है। प्रकृति यहाँ एकान्त में बैठ कर अपना रूप सँवारती है। पल में वेष बदलती है (कभी बादल आ जाते हैं और कभी तेज़ धूप निकल आता है) और क्षण क्षण मे क्षणिक सुंदरता धारण करती है। स्वच्छ जल के तालाब रूपी दर्पण में अपने मुख की शोभा देखती है और अपनी सुन्दरता पर मोहित हो कर आप ही तन-मन न्योछावर करती है। यही स्वर्ग है यही सुरलोक है, यही देवताओं का सुन्दर उपवन (बाग) है। यही अमरो (देवताओ) का लोक (घर) है। यहीं कहीं पुरंदर (इन्द्र) भी बसता है।

स्वर्गीय वीणा

कवि ईश्वर की अदृश्य माया को ही एक स्वर्गीय किशोरी मान कर उस की मीठी तान का, उसके अनूठे नर्तन का, उस के अनेकों वेषों का वर्णन करता है, और कहता है इस अदृश्य 'जोगन' का पता लगा सकते हो तो लगाओ।

१ कहीं पै—कहीं पर कोई स्वर्गीय नवयुवती सुन्दर वीणा बजा रही है। सुरों के संगीत की सी किसी तरह की मीठी झन्कार सुनाई दे रही है।

२ हरेक स्वर—उसके प्रत्येक स्वर में नवीनता है। प्रत्येक पद (गीत) में चतुरता है। निराली लय (नाचने, गाने तथा बजाने में समता) है विचित्र लीनता है और अद्भुत आलाप (तान) मिला रही है।

और श्याम (काली) घटा लेकर दौडो और आकाश को दबाकर छा जाओ अपने दल को सजाकर लाओ और अपनी सुन्दर शोभा फैलाओ।

१३—१४—घोरहु घुमडि—ज़ोर से घुमड (उमड) कर गर्जो, और दसों दिशाओं को घेर लो दामिनि (बिजली) को जल्दी ही दमकाओ (चमकाओ) और धनुष (इन्द्र धनुष) का चिह्न धारण कर लो। रणव्रत (युद्धव्रती) वीर की तरह घोर गर्जन सुनाओ, साथ ही सुन्दर कम्पन दिखाओ और धुरवान (बादलों) की धुर बाँध दो।

१५—१६—१७—मुग्ध मयूर—अपनी घनगर्जना सुनाकर मत्त मयूर (मदमस्त मोर) को नचाओ, नये जल से सींच कर मेंढकों को बुलाओ, मेंढकों की टर-टर कराओ। कहीं-कहीं कडक-कडक बिजली के गिरने की ठनकार सुनाओ, कहीं झिल्ली-गणों (झींगुरों) की झंकार सुनाओ। हे बहुत तरह के ढंग (रचना) के घर, वन-वन को (प्रत्येक जगल को) रगबिरगे कीडों और पतंगों से तथा घर घर को (प्रत्येक घर को) स्त्रियों के गान की तानों से भर दो।

१८, १६ करि कृत—किसानों को कृतकृत्य कर (किसानों का मनोरथ पूरा कर) सवत्सर (वर्ष) को सफल बनाओ (वर्ष में खेती पूरी हो जाना ही उसकी सफलता है) । शस्य (फ़सल) तृण और धानों को सींच कर तब अपने घर जाओ। समय समय पर फिर आओ, फिर इसी तरह चले जाओ। अपने स्वाभाविक नीति-मार्ग को स्वीकार कर सहज सौभाग्य को बढाओ।

२० प्रथित प्रेमरस—हे बादल ! हमारी यह विनती है कि (इस भारत भूमि को) प्रथित (प्रसिद्ध) प्रेमरस से सान दो और तथा विश्वास से युक्त सदा सरस अनुराग करो-प्रीति करो।

बालमुकुन्द गुप्त

श्रीराम स्तोत्र

अब आये—हे राम, अब हम तुम्हारी शरण आये हैं, क्यों कि सब तरह से हारे हुए के हरि ही सहायक मशहूर हैं, हे रघुवशमणि रामचन्द्र ! हमने यही साख (बात) सुनी है जिस निर्बल का और कोई सहारा नहीं उसके बल रामचन्द्र ही हैं, उसे राम का ही सहारा है।

जप बल—एक जप का बल, दूसरा तप का बल, तीसरा बाहुओं का (शारीरिक) बल और चौथा पैसे का बल होता है, परन्तु हमारे पास इनमें से एक भी बल नहीं है, इसलिए हे राम आप ही रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

सेल गई—सेल (भाला) चला गया, बरछी चली गई, और तीर तलवार सब चले गये, अब तो घडी, छडी और ऐनक ही क्षत्रियों के हथियार रह गये हैं।

जो लिखते—जो अरि (शत्रुओं) के हीय (दिल) पर भाले के अक (अक्षर-चिह्न) लिखा करते थे अर्थात् जिनकी बहादुरी दुश्मन के हृदय पर अकित रहती थी, आज उनके पुत्रों की आँखें कलम के डक बनाते-बनाते भी झपका करती हैं।

कहाँ राज—हे प्रभु ! अब वह राज कहाँ, और (पाट) सिंहासन कहाँ तथा वह मान-सन्मान कहाँ रहा ? अब तो हे हरि ! तुम्हारी सन्तान पेट के लिए दूसरों के पाँव पर पडती फिरती है।

जिसके कर सों—जिनके कर (हाथों) से मरने तक कठोर तलवार नहीं छूटती, हे प्रभु ! अब उनके पुत्र पेट के लिए गुलाम और दरबान हो गये हैं।

जहां लरें—जहाँ बेटा बाप से लड़े और भाई भाई से लड़े, उनके सिर से गैरों के पैर कैसे दूर हों, अर्थात् उनके यहाँ से गुलामी कैसे भागे।

बार बार—बार-बार महामारी प्लेग) आदि फैलती है, बार-बार ही अकाल (दुर्भिक्ष) पडता है। (इन्हीं बहानों से) यमराज अपने भयकर मुँह को खोलकर हमारे सिरों पर फिर रहा है।

अब तुमसों विनती—हे दीनों पर दया करनेवाले अब तुम से यही विनती करते हैं कि इन दुखिया आँखों में आपका राज बसे।

जहँ मारी को—जहाँ प्लेग आदि महामारियो और अकाल का डर नहीं हो, जिस देश की सुख सम्पत्ति बारह मास रहती हो जहाँ बलवानो में बल (ऐंठ) हो और निर्बलों की हाय-हाय न होती हो, हे भगवन् एक बार वह दृश्य इन आँखों से दिखा दो।

अबलों—हे राम! अब तक हम तुम्हारा नाम ले लेकर जीते रहे, हे गुणों के धाम राम, अब हम वह तुम्हारा नाम भी भूलने लगे हैं।

कर्म धर्म—कर्म, धर्म, सयम, नियम, जप, तप और वैराग्य इन सब की तो हम बहुत दिन पहले ही फाग (होली) खेल चुके, अर्थात् इन सब को तो दूर भगा चुके।

धन बल—धन का बल, जन (सगठन) का बल, और शारीरिक, बल, बुद्धि, विवेक और विचार तथा ज्ञान, मान और मर्यादा का जुआ तो हम कब का हार बैठे हैं, ये सब चीजें तो हम पहले ही गँवा बैठे हैं।

हमरे जाति—हमारी न कोई जाति है, न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण हैं, न धन है, न काम। हे प्रभो, हम आप से क्या छिपावें। हमारी जाति तो अब गुलाम है।

बहु दिन बीत—हे प्रभो रामचन्द्र! बहुत दिन हुए जब हमने

अपना देश गँवा दिया था, और हम अब बैठे-बैठे अपनी भाषा, अपने भोजन और अपने भेष को भी गँवा रहे हैं, विदेशी भाषा और सभ्यता को अपना रहे हैं।

नहीं गाँव—अब न तो गाँव में कोई झोंपड़ा ही है, और न ही जंगल में कोई खेत ही है। घर में बैठे बैठे ही हमने अपने सोने को रेत कर डाला है।

दो दो मूठी—दो दो मुट्ठी अन्न केलिए हम दूसरे के मुँह की ओर ताकते रहते हैं। घर में ही हम पारधी (हत्यारे) हैं, और घर ही में हम चोर हैं।

तो हूँ—तब भी हम स्वान (कुत्तों) की तरह रात-दिन आपस में लड़ते हैं। हे सुजान रामचन्द्र! हमारी आगे क्य दशा होगी?

'बिप्रन छोड्यौ—ब्राह्मणों ने हवन और तप छोड दिये है, क्षत्रियों ने तलवार छोड दी है, और वैश्यों के पुत्रों ने अपने अच्छे व्यापार छोड दिये हैं।

अपनो कुछ—अब अपना कोई उद्यम नहीं रहा, अब तो सब पराई आशा पर ही ताकते रहते हैं। इस भारत भूमि में अब तो सब वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,) दास ही हैं।

सबै कहैं—सब हम को नीच (भारतीयों को अब तक सब देशों में 'कुली' नाम से पुकारा जाता था) कहते हैं, और हम भी अपने को नीच मानते हैं। मन मलीन और शरीर से दुर्बल होकर हम किसी तरह दिनो को धक्का दे रहे हैं—दिन बिता रहे हैं।

कौन काज—हे रघुकुल नाथ! तुमसे हाथ जोड कर यह पूछते हैं कि हम किस लिये जन्म लेते और मरते हैं, और किस पाप के कारण हमारी यह हालत हुई है?

अयोध्यासिंह उपाध्याय

वीरवर सौमित्र

१—२ कर करवाल—करवाल = तलवार। विशिखादिक = तीर आदि से। लख = देख। रुधिर प्रवाह = खून की धारा। शतखंड = सौ टुकड़े। गयद=हाथी। व्याल साँप। विपुल = बहुत, समूह। केहरि = बब्बर शेर।

हाथ में तलवार लेकर पृथ्वी पर निधड़क विचरना, तीर आदियों से बींधे जाने पर भी पीछे पैर न हटाना, खून की धारा देखकर और अधिक जोश में आना, रोम-रोम के छिद जाने पर भी चित्त की दृढ़ता न खोना, और लोथ पर लोथ गिरते देख, तथा सिरों को कटते देख, तथा शरीर के सौ टुकड़े होते देखकर भी विचलित न होना, तोपों के बरसते हुए अग्निकांड को देखकर भी चित्तमें न डरना और सिर पर से गोलों को गुज़रते देखकर भी न काँपना, मदमस्त हाथी से भिड़ना और बबर शेर से लड़ना और दौड़ कर हाथ से बहुत ही क्रुद्ध साँप को पकड़ना तथा काल का भयानक मुँह देखकर भी धीरता न छोड़ना, साथ ही अनेक वीरों से अकेले लड़ना यद्यपि बड़ी भारी वीरता है।

३ किन्तु वीरता—वर = श्रेष्ठ, बढ़िया। वज्रशरीरता = वज्र जैसा दृढ शरीर होना।

परन्तु इनसे भी उच्चकोटि की और कई वीरताएँ हैं जो कि (ऊपर) वर्णन की गई वीरताओं से श्रेष्ठ कही गई हैं। स्वार्थ त्याग करना और क्रोध से जीता न जाना विपत्तिकाल और आड़े मौके पर भी धैर्य न खोना ऐसे ही कितनी और दूसरी तरह की वीरताएँ हैं जिनमें न तो बहुत बल चाहिये, और न वज्र जैसा कठोर शरीर ही।

४ रामानुज में—रामानुज=राम का छोटा भाई, लक्ष्मण। कीर्तिनिकेत=यश का घर। कलित=सुन्दर।

राम के छोटे भाई लक्ष्मण में दोनों प्रकार की वीरता ही दीखती है, जो कि समय समय पर चित्त को बहुत ही लुभाती है। जब पति को वन में जाते देख सीताजी घबराई थीं, और जबकि पुत्र की जुदाई देख कौशल्या जी भी रो पड़ीं थीं उस समय सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने जो आत्मबल दिखलाया, वह उनके यश के मकान का सुंदर और अटल खभा है—अर्थात् उस आत्मबल ने उनके यश को अटल कर दिया है।

५ तजा उन्होंने—सुर-उर-ग्राही=देवताओं के चित्त को भी खींचने वाला। जाया=स्त्री। भायप=भ्रातृभाव।

उन्होंने देवताओं क भी चित्त को खींचने वाला राज-भवन का सुख छोड दिया, सब भाँति प्रशसा के योग्य सुमित्रा जैसी माँ को भी छोड दिया, जिसका विरह कभी किसी क सम्मुख नहीं आया ऐसी परम सुशीला उर्मिला जैसी स्त्री को भी छोड दिया (कवियों ने सीता, दमयन्ती, आदि के विरह का बहुत गान गाया, पर उर्मिला के १४ साल के विरह पर किसी ने एक पक्ति भी नहीं लिखी, अतएव वह जनता के सम्मुख मानों आया ही नहीं) परन्तु बचपन की प्रीति की डोरी में बँधे और भ्रातृ-भाव क रग में रँगे लक्ष्मण अपने प्यारे भाई को न छोड सके और उसके पीछे लगे (साथ-साथ) जगल को गये।

६ यों उनका—आत्मबल-सभवा=आत्मबल से उत्पन्न होने वाली।

इस तरह उनका अपनी स्त्री, माता और राज-सुख को छोड जाना, यति-भाव से वन में चौदह बरस बिताना, तथा राम और सीता को पिता, माता, और स्वामी समझकर वन में अनेक दुःख सहकर भी उनका आज्ञाकारी बना रहना, ससार को चकित कर

देने वाला काम है, और यही मनोहर धीरता से मिली हुई आत्मबल से उत्पन्न अलौकिक वीरता है ।

७ कुसुम चयन——कुसुम=फूल । अलकावलि=केशपाश, जूड़ा । केलिरत=प्रेमक्रीडा में मग्न । उटजादि=झोंपड़ी आदि । कर्त्तन=काटना । किसलय=किशलय, कोमल पत्ता । यामिनी = रात । सुमुखी=सुन्दरी । नखतावलि=तारों का समूह ।

जिस समय रामचन्द्र फूल चुन चुन कर सीता के जूड़े में लगाते, या जब सीता के संग अन्य प्रेम-लीलाओं मे मग्न देखते उस समय लक्ष्मण सुन्दर कुटी आदि बनाते और सुन्दर शाल वृक्ष की शाखा काटते दिखाई देते थे। जो रात रामचन्द्रजी कोमल पत्तों की सेज पर पत्नी के साथ सोकर बिताते थे, वह रात लक्ष्मण जागते हुए तारों के गिनने मे बिताते थे ।

८ कभी जानकी—पेटिका=पेटी । दुरारोह=जिस पर कठिनता से चढ़ा जा सके । सरसि=तालाब । गमनागमन=आना जाना । वसन=कपड़ा । पादप=पेड़ ।

कभी जनकी के कपड़े और आभूषणों की पेटी हाथ में लिये वे कठिनता से चढ़े जाने योग्य ऊचे पहाड़ पर चढ़ते दिखाई देते थे, कभी लता और बेल काटते और कटीले पेड़ों को अलग करके घने जंगल मे रास्ता बनाते दिखाई देते थे। और कभी सीता जी की कुटी से तालाब तक आने जाने के लिए पेड़ों पर कपड़े बाँधकर रास्ते पर निशान बनाते दिखाई देते थे ।

९ एक तुषार से—तुषार=बर्फ़, कोहरा । सीकरमय=जल-कणों से युक्त ।

एक कोहरे से मलिन चाँदनी वाली रात में जब कि वह समाप्त होने वाली थी, और वन में बड़ी सरदी थी, वे तालाब में पानी भरते हुए और जलकणों ('ओसकणों') से युक्त घास के में बच बच कर पैर रखते हुए दिखाई दिये थे। एक बादलों

से घिरी हुई रात में अपने सिर पर पानी की झड़ी को सहते हुए वे चूती हुई कुटिया के लिए पत्ते लाते हुए मिले थे।

१० यह अति कोमल—कुवलय-कर-लालित = कमल के समान कोमल हाथों से खिलाया गया। व्यजन = स्वादिष्ट भोजन। विभव = ऐश्वर्य, सम्पत्ति। अवगत = ज्ञात। रामरत = राम के प्रेम में मग्न।

कमल के समान कोमल हाथों से खिलाया गया, सुख से पाला गया, सोने की तरह उज्ज्वल कांतिवाला, फूलों की सेज पर सोने में चतुर (जिसे फूलों की सेज पर सोने की आदत थी), कोमल पृथ्वी पर विचरण करनेवाला, और स्वादिष्ट भोजन, अच्छे कपड़े तथा अत्यधिक ऐश्वर्य का अधिकारी वह सुकुमार राजकुमार जब जंगल में कठोर व्रत करता दिखाई देता था, तब संसार को यह ज्ञात हुआ था कि वह राम के प्रेम में कितना मग्न है।

११ सुन कर धनु—मेदिनी = पृथ्वी। दिग्दन्ती = दिशाओं के हाथी। दलक = किसी चोट के कारण काँपना। विशिखवृन्द = बाणों का समूह। शोणित = खून। वह्नि = आग। त्रिपुरान्तक = त्रिपुर राक्षस को मारने वाले, महादेव। पग रोपते = पैर धरते।

जिसके धनुष की टंकार सुन कर पृथ्वी थर्रा जाती थी और दिशाओं के हाथियों की छाती दुगुनी काँप उठती थी, जिस के बाणों के समूह से आकाश घिर जाता था, और जो दसों दिशाओं से खून का सोता बहाता था, वह वीर लक्ष्मण जिस समय रण भूमि में पैर रखता था, उस समय प्रलय की आग दहकती दिखाई देती थी, और महादेव क्रुद्ध हुए दिखाई देते थे।

१२ अमर वृन्द जिसके—अमर = देवता। पूषण = सूर्य। पाहन = पत्थर। गठित = घनी हुई। काया = शरीर। रिपुदमन = रिपुओं का दमन (मर्दन) करने वाला।

जिसके डर से देवता थर-थर काँपते थे, जो युद्ध भूमि में प्रचड सूर्य के समान तपता था जिस का शरीर पत्थर का बना हुआ था (पत्थरों के समान कठोर था), जिस की (राक्षसी) माया अनेक तरह की और बडी भयकर थी, वह बडा साहसी तथा शत्रुओं का दमन करने वाला मेघनाद भी जिसकी क्रोधरूपी आग में जल गया, वह सुमित्रा का पुत्र 'लक्ष्मण धन्य है'।

१३ कुठित मति—कुठित मति=मद बुद्धि। पौरुष=पुरुषार्थ अपर=दूसरे। हिमगिरि=हिमालय। अमरावती=इन्द्र की नगरी। राकारजनी=पूर्णमासी की रात।

वे मदबुद्धि होने से, पुरुषार्थ की कमी या लाचारी से अथवा किसी स्वार्थ साधान के लिए राम चन्द्र के अनुगामी (आज्ञाकारी) न थे, वरन उनके हृदय में न्यारी भ्रातृ-भक्ति थी, जिसने उनके दूसरे विचारों पर मोहनी डाल दी थी (दूसरे भावों को जीत लिया था)। मानो उनके जीवन-रूपी हिमालय की चोटी पर अमरावती से गिरी हुई पूर्णिमा की चाँदनी की तरह उज्ज्वल स्नेह से युक्त वीरता शोभित थी।

१४ वे वासर थे—वासर=दिन। शुचि=पवित्र।

वे दिन बहुत सुन्दर तथा दिव्य दिखाई देते थे, जब कि भारत मे लक्ष्मण जैसे भाई विराजमान थे। आज घर-घर में झगडा और छल कपट फैला हुआ है, भाई का हृदय भाई से मैला होगया है। हे प्रभो! फिर लक्ष्मण जैसे भाई घर-घर मे पैदा हो, शोभित हों और पवित्र चरित्र वाले सुखी परिवार फिर भारत भूमि में बसें।

फूल और काँटा

१ हैं जन्म देते—काँटा और फूल दोनों एक ही जगह पैदा होते हैं, एक ही पौदा उन्हें पालता है। रात में चमकता हुआ चाँद भी उन पर अपना एक ही सा प्रकाश डालता है।

२ मेंह उन पर—उन पर एक-सा ही मेंह बरसता है, एक-सी ही हवायें बहती हैं, पर हमें हमेशा यही दिखाई देता है कि उन की चाल-ढाल एक-सी नहीं होती।

३ छेद कर—कांटा किसी की उँगलियों को छेद देता है, किसी के सुन्दर वस्त्र फाड डालता है, प्यार में डूबी हुई तितलियों के पर कतर देता है, और भौंरे के कारे शरीर को बेध डालता है।

४ फूल लेकर तितलियों को—फूल तितलियों को अपनी गोद में ले लेता है और भौंरे को अपना अनूठा रस पिलाता है। अपनी सुगन्ध से और विचित्र रगों से जी की कली को खिला देता है—जी को प्रसन्न कर देता है।

५ है, खटकता एक सब की—सुर-सीस=देवताओं का सिर। एक सब की आँखों मे खटकता है और दूसरा देवों के सिर पर शोभित होता है। फिर बताओ जब किसी में बड़प्पन की ही कमी हो तो उसके कुल की बड़ाई किस काम में आवे।

भगवानदीन "दीन"

आँसू

दीन-दुखियों के—गरीब और दुखियों के दुखे हुए दिल के लाडले आँसू, प्रेममार्ग के यात्रियों—प्रेमियों—के प्यारे आँसू, डरी हुई आँखों के तारे आँसू, भक्तिरस से भीगे हुए मान के आँसू, आदि-कवि वाल्मीकि के परमपुष्ट सहारे आँसू* तेरी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ?

शोक से—दुख से, या डर से जब कभी दिल घबरा जाता है, खुशी मे या ईश्वर की भक्ति से जब कभी दिल भर आता है, हे प्यारे आँसू! तब तू शीघ्र ही लपक कर आँखों पर आ जाता है, तथा दिल के सब भेद—सब रहस्य—खोलकर एकदम बतला देता है और दिल की हालत का तू पता देता है। हे प्यारे आँसू! तेरी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ?

पुत्र की आँख—हे प्यारे आँसू! पुत्र की आँखों मे माता जो कहीं तुझे देख पाती है तो दौडकर झट से तुझे अपने अचल में बिठा लेती है अर्थात् अपने आँचल से झट तुझे पोछ देती है। ऐसे ही प्यारी की आँखो में जब कभी तू चमकता है, तब झट से उसके प्रेम का हाथ तुझे सुन्दर कपडे पहनाता है अर्थात् तुझे कपडे से पोंछ देता है। इस तरह तेरा अजब आदर होते देखा गया है। हे प्यारे आँसू! तेरी महिमा कौन कह सकता है ?

द्रौपदी दृग—द्रौपदी की आँखों में जब तू चमका था, तब तूने सब कौरवों का नाश कर दिया था अर्थात् जब भीम ने दीन-दुखी

* पृष्ठ २०२ के फुटनोट की कहानी देखिये।

द्रौपदी की आँखों में आंसुओ को देखा था तब उसने आवेश में आकर कुरुकुल के नाश करने की प्रतिज्ञा की थी, जिसका फल सब को विदित ही है। (यही आवेश दिलाकर) तूने भीम को भाई ही का खून पिलाया था और अर्जुन के हाथ से अनर्थों (न मारने योग्य पितामह, गुरु, भाई इत्यादियों) को मरवाया था। हे खारे आँसू ! तूने अपन बल से क्या काम नहीं किया अत तेरी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ?

मातु क मैन—माता की आँखों से गिर कर जो तूने गजब ढाया और परशुराम से जो काम कराया था उसका वर्णन क्या करूँ। तूने ससार को इकीस बार क्षत्रियहीन करवा दिया था॰यह तेरी माया सारे ससार को विदित है, तूने ही परशुधर को वह ज़ोर दिया था। हे खारे आँसू ! तेरी महिमा कौन कह सकता है ?

॰ परशुराम की मासी सत्या का विवाह हैहयाधिपति कार्त्तवीर्य से हुआ था। कार्त्तवीर्य का नाम सहस्रार्जुन भी था क्योंकि उसके हजार हाथ थे। एक दिन परशुराम की माता रेणुका अपनी बहन सत्या के यहाँ किसी व्यवहारिक अवसर पर न्योता खाने गई। चलती बार उसने अपनी बहन से कहा कि बहन तुम भी कभी मेरे घर पर आओ। इस पर उसकी बहन बड़े अभिमान से बोली तुम दरिद्र ऋषि की स्त्री हमारी सेना को कहाँ से खिलाओगी ? रेणुका को यह बात लग गई। उसने घर आकर अपने पति जमदग्नि ऋषि से कहा। सयोगवश एक बार कार्त्तवीर्य आखेट खेलते हुए जमदग्नि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि ने कामधेनु गौ द्वारा सेनासहित राजा का सत्कार किया। कामधेनु का यह प्रभाव देखकर राजा ने ऋषि स वह गौ माँगी, पर जब ऋषि ने देने स इन्कार कर दिया। तब राजा जबर्दस्ती गौ छीन कर चल दिये।

आदि कवि—आदि कवि वाल्मीकि की आँखों में जब तू आया था तब तूने उनके मुख से 'मा निषादादि' श्लोक बुलाया था तथा उसके बाद राम के चरित्र को प्रत्यक्ष कर दिखलाया था और वाल्मीकि रामायण का सा बडा ग्रन्थ बनवा दिया था। हे आँसू! कविता का मूल तू ही है।※ अत हे प्यारे आँसू! तेरी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है?

उस समय परशुराम आश्रम में नहीं थे, जब परशुराम आश्रम में लौट कर आये तब उसके पिता ने उन्हें सारा हाल बतलाया। परशुराम उसी समय राजा के पीछे गये, और उसे मारकर गौ वापिस ले आये।

इधर कुछ दिन बाद जब परशुराम आश्रम से बाहर गये हुए थे तब अवसर पाकर सहस्रार्जुन के बेटे आश्रम में घुस गये और जमदग्नि ऋषि का सिर काट कर अपने नगर को चल दिये। जब परशुराम आश्रम में लौटे तब उन्हों ने अपनी माता को बिलखते देख कर कारण पूछा। रेणुका ने सब बातें कह सुनाईं और इक्कीस बार छाती को पीटा तथा शत्रुओं से इसका बदला लेने की आज्ञा दी। परशुराम उसी समय सहस्रार्जुन की राजधानी में गये और सहस्रार्जुन के सब बेटों को मारकर उन्होंने इक्कीसबार दोष क्षत्रियों का भी नाश किया।

※ एक बार वाल्मीकि मुनि तमसा नदी के किनारे बैठे हुए सन्ध्या-वंदन कर रहे थे। नदी के दूसरे तीर पर एक सुन्दर क्रौंच पक्षी का जोड़ा केलि-क्रीडा कर रहा था। इतने में ही किसी निर्दयी व्याध ने उस जोड़े में से नर को तीरका निशाना बनाया। वह निरपराध पक्षी खून से लथ-पथ हो पृथ्वी पर गिर कर छटपटाने लगा। नर की यह दशा देख मादा बहुत दुखी हो विलाप करने लगी। इस करुणापूर्ण

जगन्नाथ दास रत्नाकर

हरिश्चन्द्र-परीक्षा

१ चलि सुरपुर—सुरपुर=स्वर्ग। अवधपुरी=अयोध्या। सुभग=सुन्दर। उपवन=बाग। आराम=बाग। तरुवर=सुन्दर वृक्ष।

स्वर्ग से चलकर विश्वामित्र मुनि अयोध्या नगरी में आये और उन्होंने वहाँ की सुन्दर मनोहर शोभा देखी। अयोध्यापुरी में सब तरह से सुख देने वाले और मन को हरने वाले, वन, बाग तथा बगीचे थे, जिनमें पत्तों एवं फल-फूलों से हरे-भरे तथा लदे हुए सुन्दर वृक्ष लहलहाते थे।

२ निरखि गुनावन—करत गुनावन=विचार करते हुए। राजपौरी=राजद्वार। रचना=बनावट, ऊँचे ऊँचे मकानों की बनावट। निज सृष्टि शक्ति=सृष्टि उत्पन्न करने की अपनी शक्ति। रजत=चाँदी। हेम=सोना। मुकता=मोती। मञ्जुल=सुन्दर। विराजत=शोभित था। खचित=जड़ा हुआ।

दृश्य ने धर्मात्मा ऋषि को पिघला दिया, उनकी आँखों में आँसू आ गये, और सहसा उनके मुख से निकल पड़ा—

"मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥"

हे निषाद! तुम भी इस संसार में अधिक दिन तक जीवित न रहो, क्योंकि अकारण ही क्रौंच के जोड़े में से एक को, जो काम से मोहित था, तुमने मारा है। दयार्द्र मुनि के मुँह से जो यह सहसा वाणी निकली वह चार चरणों में बँटी हुई, लयसंयुक्त और वीणा पर गाने योग्य थी। इसका नाम श्लोक रक्खा गया। इससे पहले जगत् में केवल वैदिक छन्द ही प्रचलित थे, लोक में छन्द-रचना न होती थी इसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने इन्हीं छन्दों में अपना रामायण नामक बृहद्ग्रन्थ लिखा, अतएव इनको 'आदि कवि' कहा जाता है और आँसुओं को या करुणा-रस को कविता का मूल कहा जाता है।

तरह तरह के विचार करते हुए वे राजद्वार पर आये, वहाँ की बनावट (शोभा) देख कर उनका अपना सृष्टि-निर्माण का सब घमण्ड जाता रहा। * चाँदी, सोना, और मोतियो से

* राजाहरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे, इसके लिए उन्होंने अपने पुरोहित वसिष्ठ से कहा, पर उन्होंने उत्तर दिया कि यह असम्भव बात हमसे न होगी। तब त्रिशंकु वसिष्ठ के पुत्रों के पास गया, पर उन्होंने भी पिता की तरह इनकार कर दिया। इस पर त्रिशंकु ने दूसरा पुरोहित करना चाहा पर वसिष्ठ के पुत्रों ने शाप द्वारा उसे चाण्डाल बना दिया। तब वह दुखी होकर विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र ने वसिष्ठ से अपने पुराने बैर का बदला चुकाने के लिए राजा से प्रतिज्ञा की कि वे उसे इसी देह से स्वर्ग भेजेंगे और उन्होंने यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञ में और सब ऋषि आये पर वसिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आये। विश्वामित्र ने शाप द्वारा उनको भस्म कर दिया। यह देख कर डर के मारे अन्य ऋषि यज्ञ कराने लगे पर देवताओं ने यज्ञ-भाग न लिया। इस पर विश्वामित्र बहुत बिगड़े और केवल अपनी तपस्या के बल से ही वे त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग में भेजने लगे। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है, तो उसने पुकारा कि तू यहाँ आने योग्य नहीं है, "नीचे गिर।" त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और उसने विश्वामित्र को "त्राहि त्राहि" पुकारा। विश्वामित्र ने तपोबल से उसे वहीं बीच ही में रोक दिया और क्रुद्ध होकर उन्होंने दक्षिण की ओर दूसरी सृष्टि तथा नक्षत्रों की रचना की, और बहुत से जीवजन्तु बनाये। तब इन्द्रादि देवता लोग डर कर इन से क्षमा माँगने आये। इस पर विश्वामित्र ने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति स्थिर करके आगे बनानी बन्द कर दी।

युक्त सुन्दर महल विराज रहा था जिसके दरवाजे पर बड़े-बड़े अच्छे जड़े हुए मणि शोभित हो रहे थे।

३ टरे चन्द—"सूर्य और चन्द्र चाहे अपने नियम से टल जायँ और मेरु पर्वत भी चाहे टल जाय (अपने स्थान से विचलित हो जाय) समुद्र चाहे अपनी जगह (मर्यादा) छोड़ दे परन्तु राजा हरिश्चन्द्र उज्ज्वल सत्य से कभी विचलित नहीं होगा।" इस अभिमानयुक्त प्रतिज्ञा को पढ़ कर मुनि के मन में फिर ईर्ष्या उत्पन्न हो गई और उन्होंने भौंह चढ़ा कर मन में कहा—"भला देखेंगे तो"

४ तब लौं—पौरिया = दरबान। उमगि = उत्साहपूर्वक।

तब तक द्वारपाल ने दौड़ कर राजा को यह ख़बर दी कि महाराज आज इधर एक ऋषिवर ने कृपा की है अर्थात् द्वार पर एक ऋषिवर आये हैं। यह सुन कर राजा उत्साह पूर्वक स्वयं ही वेग से द्वार पर आये और प्रणाम करके तथा पैर छूकर आदर पूर्वक उन्हें सभा में ले गये।

५ बैठार्यो—हिराये = दंग रह गये, अत्यन्त चकित रह गये।

बहुत तरह के नियम के शब्द कह कर सम्मान से राजा ने ऋषि को बैठाया और आनन्द से उन का शरीर पुलकित हो गया तथा आँखों में (आनन्द के) आँसू आ गये। राजा का स्वाभाविक (बेबनावटी) व्यवहार मुनि के मन को बड़ा ही अच्छा लगा और राजा की श्रद्धा, सुशील स्वभाव और नम्रता देख कर मुनि दंग रह गये।

६ पै बानि करि—परन्तु फिर उन्होंने धायी को उदासीन

करके अपना परिचय दिया और कहा हे राजन् ! सुनो, जिसका तुमने इतना आदर किया वे हम कौन हैं? जिसके तप के बल से सारे ब्रह्माण्ड में आतंक फैल गया था और विष्णु भगवान् का आसन विचलित हो गया था तथा जो तप के बल से क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि हो गया है—

७ कौसिक विश्वामित्र—वे ही हम कौशिक (कुशिक राजा के वंशज) विश्वामित्र सारी पृथ्वी का दान लेने की इच्छा से तुम्हारे पास आये हैं। तुमने हमें जान लिया है और हमारे आने का कारण भी तुम जान गये हो, अब तुम्हारे हृदय में जो विचार हो सो शीघ्र कहो।

८ बच्यो भूप—सुपात्र = अधिकारी। हूकै = चुभती रहेगी।

राजा ने कहा "हे ज्ञानी मुनि! जान बूझ कर क्यों आप मुझ से इस प्रकार पूछते हैं? यदि आपने सारी पृथ्वी का दान लेने का सङ्कल्प कर लिया है तो इसमें सोचना कैसा? भगवन्! यदि आप जैसे अधिकारी को पाकर दान देने में तनिक भी चूक जाऊँ तो यह भूल सदा मेरे मन में चुभती रहेगी।

९ लीजै मानि—प्रमोद = आनन्द। स्वस्ति = कल्याण। स्रवन = कान। लेख्यौ = मन ही मन ठहराया।

लीजिये बड़े आनन्द के साथ तथा आदरपूर्वक मैंने सारी पृथिवी आपको दान कर दी—मुनि ने "कल्याण हो" ऐसा कह कर मन में राजा की बड़ी प्रशंसा की और (मन ही मन) कहा कि जैसा मैंने कानों से सुन रक्खा था उससे बढ़ कर

आँखों से देख लिया है। सचमुच ही राजा हरिश्चन्द्र उत्तम चरित्रशाली है ऐसा मुनि ने निश्चित किया।

१०-११ सद्-गुन-गन—सद्-गुण गन-आगार=शुभ गुणों का कोष। तचे पचैं=हाथ पैर मारते हैं। नैकु=थोड़े से भी। गनि=सोचकर।

मुनि सोचने लगे—सत्य ही यह राजा श्रेष्ठ गुणों की खान है, धर्म का आश्रय है और परम उदार है। जिस भूमि के बस हाथ (ज़रा से टुकड़े) के लिए राजा लोग मस्तक कटा देते हैं, रुंड हो जाने पर भी लड़ते हैं और रुधिर के तालाब भर देते हैं, जिसके लिए स्वार्थ से घिरे हुए मनुष्य तप कर करके पच मरते हैं (हैरान हो जाते हैं) वह सारी पृथिवी एक तिनके की भाँति इसने छोड़ दी-माथे पर ज़रा भी बल नहीं आने दिया। अब मैं कौन सी कुचाल चल कर इसका व्रत भङ्ग करूँ? फिर कुछ सोच कर बोले—राजन्! अब इस दान की कुछ दक्षिणा भी तो दो।

१२ कह्यो भूप—बेगि=जल्दी ही। आननहित=लाने के लिए।

राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—"भगवन! जो आपकी इच्छा हो वह लीजिए।" ऋषि ने कहा—"बस केवल एक हज़ार मोहरें दे दीजिये"—"जैसी आपकी आज्ञा" यह कह कर राजा ने तुरन्त ही मन्त्री को बुलवाया और एक हज़ार मोहरें लाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक भेज दिया।

१३ यह लखि—विकराल=भयङ्कर। धर्मध्वज=धर्म की डींग मारने वाले। मृषा=झूठे। पन=प्रतिज्ञा।

हुए। फिर मन ही मन अपनी बुद्धि के अनुसार उनकी प्रशंसा करने लगे—"हे हरिश्चन्द्र ! तुम्हारी धर्म की इतनी अधिक दृढ़ता धन्य है और सचमुच ही तुम तीनों लोकों में मनुष्यों को गौरव-युक्त करने वाले हो (वस्तुतः तुम यशस्वी हो !)"

२२ पुनि बानि—फिर अपनी वाणी को कुछ उदासीन सा करके उन्होंने यह आज्ञा दी, कि तुम्हें दया करके एक मास का अवसर देते हैं। परन्तु जो एक मास के भीतर सब स्वर्ण-मुद्राएँ नहीं पायेंगे तो तुम्हें तुम्हारे पूर्वजों समेत शाप देकर नरक भेज देंगे।

२३ जो आज्ञा—उछाह=उत्साह।

राजा ने बड़ी प्रसन्नता से "जो आप की आज्ञा" कह कर मस्तक झुका दिया और मन्त्री तथा अन्य सब राजकर्मचारियों को बुलवा कर उनसे बड़े उत्साह से उसी समय कह दिया कि "हमने आज से सारा राज्यभार ऋषिराज को दे दिया है।"

२४ वेगहिं उठि—राजा ने शीघ्र ही उठ कर अपने सिंहासन को प्रणाम किया और रानी शैव्या तथा पुत्र रोहिताश्व को साथ लेकर वे राज्य छोड़ कर चल दिये, किसी तरह का हर्ष या शोक उनके हृदय में उत्पन्न नहीं हुआ। उस समय वे और विचारों को भूल गये एक केवल ऋण उतारने का विचार ही उनके हृदय में व्याप्त हो गया।

देवीप्रसाद पूर्ण

मृत्युंजय

१ प्रतिनिधि खल—हे दुष्ट कराल काल के प्रतिनिधि, कुटिल, क्रूर, भयकर, पापी, महानीच तथा अपवित्र मृत्यु, तेरी दुर्गिया (काली करतूत) बडी विलक्षण है।

२ करत सैर हुते कल—हुते=थे। तुरग=घोडे।

जो कल घोडों की रेशमी बाग हाथ में ले कर बाग की सैर कर रहे थे, अब उनकी कहानी ही सुनाई देती है, वे जगत रूपी बाग को छोड कर चल बसे।

३ रत्न मन्दिर—अमद=सुन्दर।

जो अति सुन्दर रत्नों के मन्दिर में हमेशा रमण करते थे दो दिनों के फेर में ही वे आज घोर भयकर श्मशान में सो रहे हैं।

४ गति सुधारन की करि—इसलिए अपनी गति (मृत्यु के उपरान्त की दशा) सुधारने का निश्चय करके चित्त में धीरज धरना उचित है। फिर जल्दी हो अथवा कुछ काल में हो हम काल को अवश्य ही जीत लेंगे।

५ सकल पापन—हमेशा सब पापों से बचकर बिना वासना (इच्छा) के शुभ कर्म करो। असली तत्त्व हमेशा ध्यान में रक्खा जाय, बस सुन्दर ज्ञान का यही सुखदायक मार्ग है।

६ जगत है मन—'यह ससार केवल मन की कल्पना मात्र है' जब यह निश्चय दृढ हो जाता है, और जगत् पूर्ण ब्रह्म ही दिखाई देता है, बस यही परिपूर्ण ज्ञान है।

७ पर दशा यह—पर यह पूर्ण ज्ञान की दशा तब तक सदा एक समान स्थिर नहीं रहती जब तक कि सब चराचर वासनाओं को छोड़कर मन को वश में नहीं करते।

८ सुहृद संग—मित्र संगी, भाई, सुंदरी स्त्री, सुख देने वाली संतान, घर, पृथ्वी, सुयश और संपत्ति की कामना, सब को बस बंधन-मात्र ही समझना चाहिए।

९ यदि कराल असार—यदि तुम्हें संसार असार मालूम पड़ता है, और तुम्हारे हृदय में जगत् का बंधन बुरा लगता है, और दिल में मुक्ति की इच्छा उत्पन्न हो गई है, तो तुम ज्ञान को साधन बनाओ।

१० तिमिर नाश—जिस तरह प्रकाश के बिना तिमिर (अंधेरे) का नाश नहीं होता, जिस तरह वायु के बिना बादल नष्ट नहीं होते, जैसे वर्षा के बिना निदाघ (गरमी) नहीं जाती, ऐसे ही ज्ञान के बिना मृत्यु नष्ट नहीं होती।

११ बिलग वारिधि तें—चाहे मूर्ख कुछ ही समझें, परन्तु वारिधि (समुद्र) से तरंग अलग नहीं हैं। लहर और अंबुधि (समुद्र) दोनों ही जल हैं, ऐसे ही जगत को ब्रह्ममय ही समझो।

१२ कनक के—सोने के अनेक आकृति के चाहे कड़े अथवा किंकनी (करधनी) बनाइए तब भी वह सोने से अन्य कुछ नहीं होता, ऐसे ही सम्पर्ण जगत् को ब्रह्ममय समझो।

१३ भवन में—जैसे भवन में, मंदिर में तथा घड़े में आकाश अनेक प्रकार का दिखाई देता है तब भी शुद्ध बुद्धि वालों के लिए आकाश एक ही है, ऐसे ही सब में परमात्मा एक ही है।

मन बंदर

मन शरीर में रहता हुआ, त्रिभुवन में विचरता रहता है, कभी कुछ इच्छा करता है, कभी कुछ। कभी वह कुछ रूप धारण

करता है, कभी कुछ। पल भर में वह सारे ससार का चक्कर काट आता है, इस पर कवि लिखता है—

हे मन रूपी बन्दर ! मैंने तुझे पहचान लिया है। तू भवन (शरीर) में बँधा हुआ भी त्रिभुवन में कूदता फिरता है। कभी तू बाज़ीगर है, कभी जादूगर है कभी बहुरूपिया है और कभी कलन्दर (नाच नचाने वाला) है। कभी तू छोटा है, कभी तू भारी है कभी मच्छर है और कभी बड़ी-बड़ी मूछों वाला है। कभी तू सवार है कभी तू पैदल है, कभी तू दारा (शाहजहाँ का बेटा जो उदार समझा जाता है) कभी तू सिकन्दर (के समान आक्रमणकारी) है। कभी महन्त है और कभी सत है, कभी गुरु है तो कभी चेला है,कभी कुबेर है और कभी इन्द्र है। कभी तू राई से दबकर ही बुरा मानने लगता है, और कभी तू पहाड गिरा देता है। कभी जल में विचरता है और कभी आग में, कभी तू मगर है और कभी समुद्र है। परन्तु हे मूर्ख मन, तू मच्छली है, और यह सब ससार अगम समुद्र है। इसमें अपनी उछल कूद को निष्फल समझ कर हे बन्दर, तू उस पूर्ण परमात्मा को न छोड।

रामचरित उपाध्याय

वीरवचनावली

१ निजबल मे बलि के—पैठि=घुसकर, पहुँचकर। शीश=सिर। शेस=शेष नाग, जिसके फणों पर यह पृथ्वी ठहरी मानी जाती है। शमन=दमन।

यदि मै पाताल में घुस कर बलि के बंधन* को बल से तोड न सका, यदि मैंने चन्द्रमा के कलक को न मिटा दिया और यदि मेरे हाथों से यमराज न मरा, यदि मैं शेषनाग के सिर पर से पृथ्वी को छीन कर उस का भार अपने सिर पर न ले सका, और यदि मैं अपने शत्रुओं का नमन न कर सका तो मुझे लाख बार धिकार है। कवि का भाव यह कि 'वीर, के कोप मे असभव शब्द नहीं है। जो किसी कार्य को असम्भव समझे वह वीर नहीं है।

---

*बलि और वामन की कहानी ३४वें पृष्ठ पर आ चुकी है। उसमें बताया गया है कि किस तरह भगवान् ने वामन अवतार ले कर बलि से तीन पग पृथ्वी माँगी और किस तरह उन्होंने विराट रूप धारण कर तीनों लोकों को तीन पैर में नाप लिया। उस समय बलि ने अहंकार के साथ वामन महाराज से कहा कि तुम बड़े दरिद्र हो जो तुम मुझ सरीखे दानी से केवल तीन पग भूमि माँगते हो, इसलिए भगवान ने गरुड़ द्वारा उसकी मुश्कें बँधवाई। उसी बंधन का इस पद में उल्लेख है।

२ खाकर जिसे—जिस चीज़ को खाकर उगल देते हैं (कै कर देते हैं) उसे फिर कुत्ते ही खाते हैं पर बुद्धिमान् जिसे एक बार छोड़ दें उसे वे फिर कभी नहीं छूते हमेशा प्राणों के साथ ही उनका प्रण जाता है (उससे पहिले नहीं) आग ठंडी कभी नहीं होती चाहे वह बुझ भले ही जाय। जब वह बुझ गई तो आग नहीं रही, पर जब तक आग रही तब तक गरम ही रही। इसी प्रकार वीर पुरुष भी प्राण रहते कभी अपने प्रण से नहीं टलते।

३ खाकर लात—जो लात खाकर अपमान करा कर भी शांत रहते हैं वे साधु नहीं पर पूरे मूढ़ हैं, देखो धूल पर लात मारो तो वह भी सिर पर आरूढ़ हो जावेगी (सिर पर चढ़ जावेगी) शत्रु से बिना बदला लिए कायर लोग रह ही जाते हैं। परन्तु तेजस्वी पुरुष तो शत्रु के सिर पर लात रख कर—उसे दबाकर—अपना यश फैलाते हैं।

विधि-विडम्बना

१ जिसका पतन (अवनति, तबाही) निश्चित हो गया है, उसे अपने शरीर से भी अधिक ज़िद प्यारी होती है। उसकी विधिकी विपरीतता (भाग्य का उल्टा होना) अटल है, यह विनय से या नीति से नहीं घटती।

२ जिसकी महिमा (बड़प्पन) देखकर, दुष्टों की मंडली अनिश (हमेशा) निन्दा करती है। यदि उसको भाग्य का बल मिला है, भाग्य का सहारा है तो क्या संसार में यश निर्मल नहीं रहता ? अर्थात् रहता है।

३ हे हृदय, तू अच्छी तरह स्थिर होकर—एकाग्र होकर देख के जिसको नियति (भाग्य) का बल प्राप्त है उसके लिए

और काँटो से भरा रास्ता भी सुगम है अतः गम (खेद) करना फिजूल है।

४ लाखों पुरुष यहाँ गुणों से युक्त और विविध शास्त्रों को जानने वाले पड़े हैं, हे हृदय ! बताओ तो उनमे से फिर एक दो ही ऐसे क्यों हैं जिन्होंने अपने सुकृत (भाग्य) से लोगों को अपना नौकर बना लिया है।

५ पैदा होने का परिणाम ही मरना है, यदि मृत्यु नहीं तो फिर देह (शरीर) ही कैसे मिले। हे मन, बलवान् भाग्य की करतूत के कारण पतन और शरीर का देर से साथ है।

६ हे मन, यदि दैवयोग से रमा (लक्ष्मी) रमणी (सुन्दरी स्त्री) और रमणीयता (सुन्दरता) मिल गई तो भी जिसे कविता रूपी अमृत नहीं मिला उसे रसिकला सिकता (रेत) के समान है।

७ यदि तुझे सौभाग्य से जलयुक्त तालाब के समान रस वाली सरस्वती अच्छी तरह मिल गई है तो हे मन ! तुझे वसुधा (पृथ्वी) पर ही अमरता देने वाला नया अमृत मिल गया है।

८. हे मन वही चतुरानन (ब्रह्मा) के समान चतुर है, वही अच्छे भाग्य से सुशोभित मस्तक वाला है—अर्थात् वही भाग्यशाली है, जिसे अपने मन में दूसरे के काव्य की रुचिरता (सुन्दरता) चिरतापकारी (हमेशा दु ख देने वाली) न हो।

अमीरअली

अन्योक्ति सुमन

१ मैना तू बन—हे मैना तू तो बनवासिनी (जगल में रहने वाली) है (और दैवयोग से) पिंजरे में आ पडी है। इसे दैव की ही इच्छा समझकर तू इस पिंजरे में सुख मानकर शात रहती है। तेरी कोमल वाणी के कारण ही तुझे चतुर कवि पक्षियों का सरदार कहते हैं। मीर कवि कहते हैं कि तू हमेशा मधुर वचन ही बोलती है, फिर भी तू धन्य है जो अब भी 'मैना' ही बनी हुई है, अर्थात् तुझ मे "मैं पन"—अहकार नहीं आया।

२ तोता तू—हे तोता, जब तू निपट नादान था,—जब तू बहुत ही छोटा था—तब तू पकडा गया था। और बडा होने पर तूने कुछ पढ लिया—राम-राम बोलना सीख लिया, फिर भी तू मूर्ख ही रहा, और तूने ज्ञान के भेद को—राम नाम क महत्त्व को—न समझा था अपना जीवन दूसरे क हाथ सौंपकर अपना घर (जगल का घर) भुला बैठा है। 'मीर' कवि समझकर कहते हैं कि हाय! तू अब तक सोता है (तुझे अब तक होश नहीं है) और यदि तू अपने आप होश मे न आया तो फिर तूने पढकर ही क्या किया?

३ बगला बैठा—बगला सवेरे जल के किनारे ध्यान लगाकर बैठा है, सो ऐसा प्रतीत होता है मानों तपस्वी शरीर पर भस्म लगाकर जल के किनारे तप कर रहा है, परन्तु जब उस बगले ने किनारे पर मछली देखी, तो मीर कहत हैं कि झट से उसे चोंच से पकड कर वह सारी की सारी निगल गया। हे बगुले, तुझे धिक्कार है जो मछलियाँ पिछला बैर भुलाकर फिर भी तेरे पास आती हैं उनके भी तू प्राण हर लेता है।

४ कैदी होने—मीर कहते हैं कि कैदी होने से पहले अलि (भौंरा) स्वतंत्र था। उसे वायु ने मोहन मंत्र कहकर (कमल की सुगंध पहुँचाकर) ठग लिया। फिर कुछ तंत्र (जादू) सा करके उसे वह गहरे तालाब के पास खींचकर ले गई। वहाँ लकड़ी में छेद करने वाला भौंरा अचल प्रेम में पड़ गया, और उसे कोमल कमल ने भी कैदी बना लिया। लकड़ी में छेद करने वाला भौंरा कमल के फूल को छेदकर बाहर नहीं निकल पाता।

५ जो कीन्हों शमन—शमन=शांत। मतङ्गन=हाथियों का। स्वान=कुत्ता। ढिग=पास। ससा=शशक, खरगोश। कूकै=चिल्लाते हैं।

जिस शेर ने मस्त हाथियों का मान मिटा दिया है, हाय! आज दुर्भाग्य से वह पिंजरे में आ पड़ा है। अब कुत्तों के समूह भी उसके पास भूँकते हैं, और खरगोश तथा गीदड़ भी हँसते और कान के पास आकर चिल्लाते हैं। मीर कहते हैं कि चतुर लोग सच बात कह गये हैं कि किस पर कब क्या बीतेगी इसे कौन जानता है ?

६ कोयल तू—हे कोयल! तू मन मोहकर किस देश को चली गई है, तेरे अभाव में—तेरे न होने पर—कौवे का भदेस (भद्दा) मुँह देखना पड़ा। वह है तो तेरे जैसा ही काला, परन्तु बड़ी कठोर कड़वी और न्यारी वाणी बोलता है। मीर कहते हैं, हे देव, कौवों के इस झुण्ड को दूर करो, फिर वसंत ऋतु लाओ जिससे कोयल मनोहर वाणी बोले।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही—त्रिशूल'

सत्य

१ सत्य सृष्टि का—मकरन्द = फूलों का रस । सौरभ = सुगंध मलिन्द = भौंरे ।

सत्य सृष्टि का सार है और सत्य ही निर्बल का बल है। सत्य सच्चा है, सदा रहने वाला है, अचल और अटल है। हे मित्रवर ! जीवन-रूपी तालाब में यह सत्य ही कमल है, जिसमें आनन्द-रूपी मधुर पुष्परस है और सुयश (कीर्ति) रूपी स्वच्छ सुगंध है । मुनियों के मन-रूपी भौंरे इसी पर (समय समय पर) मचलते रहे हैं, उनके प्राण भी यदि गये तो इसी पर न्यौछावर होकर ।

२ अटल सत्य—जिस मनुष्य के मन में अटल सत्य का प्रेम भरा हो, जो आत्मबल (आत्मा का बल) के देखने में आनन्द पाता हो, जो पशुबल (शारीरिक बल) को तुच्छ समझता हो, और तलवार को गर्दन का गहना मानता हो जो गोलियों की सनसन में भी सनकता—डरता—नहीं और जिसके जीवन में प्रेम ही प्राणों का आधार हो, और सत्य जिसके गले का हार हो और जिसे उस पर इतना प्यार हो—

३ सह कर सत्य—उसे सिर पर भार (विपत्ति) सह कर भी चुप रहना होगा और आये-दिन की (रोज़ रोज़ की) बड़ी मुसीबतें सहनी होंगी । उसके लिए जेल रंगमहल के समान होगी और अहनी (लोहे की हथकड़ी) गहना (आभूषण) होगी । इतने पर भी उसे मुख से 'हा हत' (अफ़सोस का एक शब्द भी) न कहना होगा। उसे परमात्मा से और

दुखी की हाय से डरना होगा तथा ताल ठोक कर अनीति और अन्याय से लड़ना होगा ।

४. तुम होगे सुकरात—तुम सुकरात होगे और तुम्हारे आगे जहर के प्याले रखे जावेंगे । ईसा के समान तुम्हारे हाथो में हथकड़ी और पैर में छाले होंगे और काले साप डस रहे होंगे इस पर भी तुम निश्चेष्ट रहोगे । इस नवजनित विषाद (नये पैदा हुए दुःख) से व्याकुल मत होना, अपने आग्रह पर, अपने वचन पर प्रह्लाद के समान डटे रहना ।

५. होंग शीतल—तुम्हारे लिये आग के अगारे भी ठडे होंगे और मौत के मारने पर भी (तुम्हारे शरीर को नष्ट कर देने पर भी) तुम मर न सकोगे (तुम्हारा नाम अमर रहेगा)

---

१ सुकरात का जन्म ईसा से ४६९ वर्ष पहले हुआ था । ४० वर्ष तक इनके जीवन में कोई घटना नहीं हुई । इसके बाद पोरिडिया के युद्ध में वीरता दिखाने के कारण इनका नाम प्रसिद्ध हुआ, इसके बाद इन्होंने तर्क-शास्त्र का अभ्यास किया और यूनान के प्रायः सभी काव्य और दर्शन पढ़ डाले । इससे इनकी तर्क-प्रणाली खूब प्रचण्ड हो गई, और बड़े बड़े तर्क-शास्त्री इनसे हार मानने लगे । धीरे-धीरे इनके विरुद्ध काफी मण्डल खड़ा हो गया । फलतः युवकों को बहका कर धर्मनीति से भ्रष्ट करने का इन पर अभियोग लगाया गया और इन्हें विष पान करने को विवश किया गया । ये महात्मा शातिपूर्वक विष का प्याला पी गये, मरते दम तक ये निश्चिंतता से तर्क करते रहे ।

२ ईसा को वधस्थान पर ले जाते समय फॉसी का दण्ड भी उनकी ही पीठ पर लाद गये थे, और जब वे महापुरुष कहीं ठहरते तो ऊपर से हंटर पड़ते थे इसी से उनके पैरों में छाले पड़ गये थे ।

३ प्रह्लाद की कहानी ८४ पृष्ट पर देखिये ।

तुम्हें क्या दुःख है अगर तुम्हारे सब साथी छूट जायँगे, तो (वहाँ स्वर्ग में) चन्द्र और चमकीले तारे तुम्हारा मन बहलावेंगे। इस तरह दुःख में भी सुख-शांति का नया अनुभव हो जायगा, और प्रेम के जल से द्वेष का सारा मैल धुल जायगा।

६ धीरज देगी—हे मित्रवर! तुम्हें मीराबाई* धीरज देगी जिसने भक्ति से प्रेमरूपी समुद्र की थाह पा ली थी। वह सत्य पर डटी रही, और प्रेम से बाज नहीं आई थी। कृष्ण

* प्रचलित वृत्त-कथा के अनुसार महारानी मीराबाई का विवाह सिसोदिया-कुल-तिलक वीरवर सांगा के बड़े राजकुमार भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के दस वर्ष के भीतर ही मीरा विधवा हो गई। तत्पश्चात् वे अपना सारा समय भजन कीर्तन में बिताने लगीं। भक्ति के आवेश में आकर प्रभुभक्त मीरा आनन्द मग्न होकर संत मंडली की उपस्थिति में गिरिधरगोपाल की मूर्त्ति के आगे नाचती और गाती थीं—

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।"
छाँड़ि दई कुल की कान क्या करि है कोई।
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई॥

कुल-ललना भक्ति के आवेश में श्रीकृष्ण की मूर्त्ति के सामने नाचे-भला राजकुल यह कैसे सह सकता था। अतः मीरा के देवर महाराणा विक्रमाजीतसिंह ने उनको इस मार्ग से रोकने के लिए बहुत प्रयत्न किये उनपर कई अत्याचार किये, पर भक्तिनी मीरा यह कब स्वीकार कर सकती थी। अंत में राणा ने प्रभुचरणामृत कहकर जहर का प्याला मीरा के पास भेजा। मीरा ने जानते बूझते भी उसे चरणामृत मान कर पी लिया। कहते हैं उस विष का उस भक्तिनी पर कुछ असर न हुआ। कुछ दिन बाद राणा ने मीरा को मेवाड़ से चले जाने को कहा। तदुपरान्त मीरा वृन्दावन में बहुत दिन रहीं वहाँ से द्वारका चली गईं, और वहाँ रणछोड़जी के मंदिर में समा गईं—फिर न उठीं।

६ पर इस लोक का व्यवहार बडा अजब है, अब ससार से न्याय तो चला ही गया है। जिन्हे कुत्ते (श्वान) छूना भी स्वीकार है, वे भी हम अभागों से घृणा करते हैं।

७ जिस गली से उच्च कुल वाले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चलते हैं, उस तरफ हमारा चलना भी दण्डनीय समझा जाता है। (यह प्रथा अधिकतर मद्रास और दक्षिणी भारत मे है) क्या धर्मग्रन्थों की यही व्यवस्था है अथवा किसी कुलवान का यह पाखण्ड—ढोंग है।

८ हम अछूतों से छू जाने पर ये छूत मानते हैं, आप चाहे कुछ करें पर हमेशा पूत (पवित्र) हैं और ये सभी को पराया समझते हैं, हे प्रभो, क्या तुम्हारे यही (ब्राह्मण) दूत हैं।

६ सरकार से अधिकार मागते हैं, पर अपना अन्याय नहीं छोडते। पुराना प्यार का नाता तोड कर हम से नया निराला सम्बन्ध जोडते हैं।

१०. हे नाथ, तुमने ही हमें पैदा किया है, और तुमने ही हमें रक्त, मज्जा और मास दिया है। फिर हमे ज्ञान देकर मनुष्य बनाया। (पर बताओ इतने पर भी) हमें ऐसा अपवित्र क्यों कर दिया ?

११ हे दयानिधि जो तुम्हे कुछ दया आवे तो अछूतों की जलती हुई आह का हिन्दुस्तान में यह असर होवे कि परस्पर प्रेम के पैर जम जावें।

उपदेश

१ अप्रमेय को न शब्द—अप्रमेय=जो नापा न जा सके, अपार, अनन्त। अथाह=जिसकी थाह न पाई जा सके। =गहराई का पता लगाना, थाह लेना। वाद=वादविवाद।

जो परमात्मा अपार है, जो नहीं नापा जा सकता उसको शब्दों में बाँध कर न बताओ। जिस परमात्मा की थाह नहीं पाई जा सकती, बुद्धि द्वारा उसकी थाह न लगवाओ। उसके बारे में पूछ कर, और बता कर लोग भूल ही करते हैं, और उस प्रसंग को लाकर—उस चर्चा को छेड कर—लोग व्यर्थ में वादविवाद करते हैं। मूल पुस्तक में पहली पंक्ति में 'न' छूट गया है।

२ अन्धकार आदि में—पुराण कहते हैं कि (सृष्टि के) आरम्भ में केवल अन्धकार ही था या अखण्ड महानिशा (प्रलय की रात) में केवल ब्रह्मा ही थे,। अरे, न ब्रह्मा के फेर मे रहो और न इस फेर में पडो कि आदि में कौन था, क्योंकि यह विषय इन चमडे की आँखों से नहीं देखा जा सकता और बुद्धि से भी परे है, अर्थात् बुद्धि भी उस विषय को नहीं जान सकती।

३ चल तारे—तारे चलते रहते हैं वे यह सब पूछने नहीं जाते। बस केवल इतना समझ लो कि इस ससार में जीना-मरना, सुख-दुःख, शोक और उत्साह तथा कार्य कारण की लडी (जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य) और कालचक्र का प्रवाह हमेशा चलता है।

४ और यह भवधार—भवधार=ससार की धारा। अविराम=बिना रुके। उद्गम=निकासस्थान। सरित=नदी।

और यह जो ससार की धारा बिना रुके निरन्तर चलती दिखाई देती है, यह ऐसी ही है जैसे दूर निकासस्थान से निकल कर नदी समुद्र की ओर बढती जाती है। लगातार एक के पीछे एक जो तरगें उठती रहती हैं वे सब एक हैं, पर एक सी दिखाई नहीं पडतीं।

मैथिलीशरण गुप्त

भारतवर्ष की श्रेष्ठता

१ भूगोल का—पृथिवी का गौरव स्वरूप तथा प्रकृति का पवित्र क्रीडा-स्थान कहाँ है—अर्थात् जिससे पृथिवी का गौरव है, जहाँ प्रकृति अपना मनोरंजन करती है वह कौन-सा देश है ? वह वही देश है जहाँ मन को हरने वाला हिमालय पहाड और पवित्र गंगाजल है। (भूमण्डल के) सब देशों से अधिक जिस देश की प्रशंसा फैली है ? उस देश की जो कि ऋषियों की भूमि है। वह कौन सी है ? वह भारतवर्ष है।

२ हा वृद्ध भारतवर्ष—हाँ बूढा भारतवर्ष ही संसार का सिरताज है ऐसा पुराना देश क्या संसार में कोई और (दूसरा) है ? भगवान् के सांसारिक ऐश्वर्य का यही सब से पहला खज़ाना है और विधाता ने सब से पहले मनुष्य-सृष्टि का यहीं विस्तार किया था।

३. यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध—यही प्रसिद्ध पुण्यभूमि (आर्यावर्त्त) है और इसके निवासी आर्य हैं। जो विद्या कला-कौशल आदि में सब देशों के प्रथम आचार्य थे। यद्यपि आज हम उनकी सन्तान अधोगति में पड गए हैं, हमारी अवनति हो गई है, पर उनकी महत्ता (उन्नति) के चिह्न आज भी कोई कोई खडे हैं।

४ शुभ शान्तिमय—जहाँ की पवित्र तथा शान्ति से युक्त सुन्दरता सांसारिक बंधनों को खोल देती थी, जहाँ मृगों से हिल-मिल कर खेल करती हुई सिंहनी फिरती थी (अर्थात् जहाँ सिंहनी भी मृगों से खेल करती थी, उन्हें मारती न थी) जहाँ स्वर्गीय भावों से—उच्च विचारों से भरे हुए ऋषि हवन करते थे, उन्ही ऋषिगणों से यहाँ (भारतवर्ष में) हमारी उत्पत्ति हुई थी

५ उन पूर्वजों की—उन पूर्वजों (हमारे पुरखाओं) की।

कीर्ति का वर्णन अत्यन्त अधिक है, हम ही केवल उनके गुण नहीं गाते अपितु सारा ससार उनके गुण गा रहा है। वे धर्म पर तिनके के समान अपने शरीर को निछावर कर देते थे। उनके समान वही श्रेष्ठ वीर थे, अटल धैर्य वाले थे और गम्भीर थे अर्थात् और कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता था।

६ उनके अलौकिक—उनके अलौकिक—पवित्र—दर्शनों से पाप दूर हो जाता था, अत्यन्त अधिक पुण्य मिलता था और हृदय का ताप (जलन) मिट जाता था। उनके उपदेश शान्ति देने वाले थे, और शोक को दूर करने वाले थे। सारा ससार उनका भक्त था, और वे लोक के हितैषी थे।

७ वे ईश नियमों—वे ईश्वर के नियमो की कभी अवहेलना (तिरस्कार) न करते थे, और अच्छे मार्ग मे चलते हुए वे विघ्न से न डरते थे, अपने लिए वे कभी दूसरो के हित को नष्ट नहीं करते थे। चिंता से युक्त अशान्ति-पूर्वक वे कभी मरते न थे, अर्थात् मरते समय वे समाधिस्थ होते थे, उन्हें कोई चिन्ता न रहती थी।

८ वे मोह बधन—मोह बधनों से मुक्त थे, स्वच्छन्द थे और स्वतंत्र थे। सब प्रकार के सुखो से युक्त थे, और शांति के शिखर पर बैठे थे, उनमें बडी शान्ति थी। मन से, वचन से और कर्म से (तीनों प्रकार से) वे प्रभु-भजन में लीन थे और ब्रह्म के अनुभव से प्राप्त होने वाली प्रसिद्ध आनद-रूपी नदी की मनोहर मछलियाँ थे अर्थात् जिस तरह मछली जल में आनद प्राप्त करती है वैसे ही वे ब्रह्म के अनुभव में आनद प्राप्त करते थे।

९ वे आर्य ही थे—वे आर्य ही थे, जो अपने लिये कभी जीते न थे, अपितु दूसरों के उपकार के लिये जीते थे, वे कभी स्वार्थ-वश हो मोह-ममता की शराब न पीते थे, अर्थात् मोह-ममता में न फँसते थे। जब वे सब ससार के उपकार के लिये जन्म लेते थे, फिर वे किस तरह कभी खाली (बिना कुछ किये धरे) बैठ सकते थे।

१० आदर्श जन संसार—ससार में इतने आदर्श जन किस देश मे हुए हैं जितने कि सत्कार्यों में लगे हुए आर्यगण यहाँ पर हुए हैं। यद्यपि आज उनके कुछ रहे सहे गीत ही रह गये हैं, पर दूसरे देशों वालों के वचन भी हमारे लिए साक्षी हो रहे हैं, अर्थात् दूसरे देश वाले भी उनकी कहानियाँ कहकर हमारे वचनो की साक्षी दे रहे हैं।

११ लक्ष्मी नहीं सर्वस्व—केवल लक्ष्मी ही नहीं अपितु चाहे सर्वस्व (सब कुछ) चला जाय, तब भी सत्य नहीं छोड़ेंगे * । अथे

*राजा सत्यव्रत की तरफ निर्देश है जिसका नियम था कि उसके बाजार में जो चीजें बिकने के लिये आवें वे यदि दिन भर में न बिक सकें तो शाम को स्वय राजा उन्हें खरीद लेगा। राजा सर्वदा अपने इस नियम का पालन करता था। एक दिन एक लुहार लोहे की बनी हुई शनिश्चर की मूर्ति लाया और कहने लगा कि उस का मूल्य एक लाख रुपया है, पर इसे जो खरीदेगा उसे लक्ष्मी धर्म, कर्म और यश आदि सब छोड़ जायेंगे। उसकी ऐसी बातें सुन कर उस मूर्ति को किसी ने न खरीदा। नियमानुसार शाम को वह मूर्ति राजा के सामने लाई गई। राजा ने सब कुछ सुन समझकर भी उसे खरीद लिया। अपने नियम को नहीं तोड़ा। आधी रात के वक्त एक सुन्दर स्त्री ने आकर राजा से कहा कि मैं तुम्हारी राजलक्ष्मी हूँ, तुम्हारे यहाँ शनिश्चर आगया, अब मैं नहीं रह सकती। मुझको विदा कीजिये। राजा ने कहा जाओ। इस तरह धर्म, कर्म, और यश भी विदा हुए। अन्त में सत्य देव भी आये, और बोले कि हे राजा मैं सत्य हूँ, शनिश्चर के कारण मैं अब नहीं रह सकता, जाता हूँ। राजा ने उठकर हाथ पकड़ लिया और कहा कि लक्ष्मी, धर्म, कर्म और यश जायँ तो भले ही चले जायँ पर आप कहाँ जाते हैं ? आपको रखने के लिये ही तो मैंने शनिश्चर की मूर्ति ली है ! सत्य से उत्तर देते न बना। सत्य न गया तब लक्ष्मी, धर्म, कर्म, और यश आदि सब लौट आये।

हो जायँ पर सत्य से सम्बन्ध न तोड़ेंगे*। अपने पुत्र का मरना स्वीकार है पर अपने वचन का पालन होना चाहिये†। ऐसा कौन है जो उन पुरुषाओं के आचरण का वर्णन कर सके।

---

* राजा अलर्क की तरफ निर्देश है जिस ने अन्धे ब्राह्मण के मांगने पर अपनी दोनों आँखें निकाल कर देदी थीं।

† राजा मयूरध्वज की तरफ निर्देश है। मयूरध्वज बड़े सत्यवादी दानी और ब्राह्मण-भक्त राजा थे। उनकी ख्याति सब तरफ फैल रही थी। यम के कहने से एक बार विष्णु भगवान् उनकी परीक्षा लेने को उद्यत हुए। उन्होंने ब्राह्मण का वेश धरा और यम ने सिंह का। दोनों राजा के यहाँ पहुँचे। राजा ने ब्राह्मण का बड़ा आदर सत्कार किया। ब्राह्मण ने कहा राजन् मैं आप के व्यवहार से सन्तुष्ट हो गया, अब इतना निवेदन है कि मेरे साथ जो यह सिंह है इसके भोजन का भार मेरे ऊपर है। इसकी यह आदत है कि यदि कोई अपने लड़के के दो टुकड़े करके इसके आगे डालता है तो यह केवल दाहिना अंग खाता है। इसकी जहाँ भूख मिट सके ऐसा मुझे कोई भी स्थान नहीं मिला। आप जैसा साधु और अतिथिप्रेमी संसार में दूसरा नहीं है इसलिए मैं आप के यहाँ आया हूँ। पर यह काम भी बड़ा मुश्किल है, इस लिए यदि आप के मन में जरा भी कष्ट हो तो न कर दीजिये जिससे मैं किसी दूसरे के दरवाजे पर जाऊँ। राजा ने कहा—महाराज अतिथि और ब्राह्मणों के लिए मैं सब कुछ दे सकता हूँ। ब्राह्मण-रूपधारी भगवान् ने फिर कहा—राजन्, सहसा कोई बात नहीं करनी चाहिए इस लिए एक बार फिर सोच लीजिए। पुत्र का बलिदान आसान काम नहीं और फिर पुत्र पर केवल आपका ही

१२ सर्वस्व करके-सर्वस्व दान करके जो राजा रति देव※ चालीस दिन भूखे रहे, फिर भी जो अतिथि सत्कारमें रूखे न रहे, जिन्होंने

अधिकार नहीं, रानी का भी अधिकार है। राजा न कहा—महाराज आपका कहना ठीक है पर वचन देकर अब सोचना क्या ? मुझे निश्चय है कि रानी और कुवर भी आपकी सेवा से मुख नहीं मोड़ेंगे।

रानी और राजकुमार को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने जरा भी खेद न माना। राजकुमार सहर्ष प्राण देने के लिए उद्यत हो गये। आखिर ब्राह्मण के कथनानुसार राजा और रानी आरा लेकर अपने हाथों से राजकुमार के दो टुकड़े करने लगे। राजकुमार प्रसन्नमुख थे पर इसी समय उनकी आँख से एक आँसू निकल आया। यह देख ब्राह्मण चलने को उद्यत हो गया। उसने कहा—राजकुमार के हृदय में दुःख है इसलिए इसे मेरा शेर नहीं खायगा। यह सुन कर राजकुमार ने कहा—मरने के भयसे मेरी आँखसे आँसू नहीं निकला। मेरे आँसू का कारण यह है कि मेरे शरीर के बायें भाग को दुःख है कि दायाँ भाग तो ब्राह्मण के काम आयगा, पर बायाँ वैसे ही रह जायगा। इसलिए मेरे केवल बायें नेत्रसे आँसू निकला है। यह सुनते ही भगवान गद्गद हो गए और उन्होंने अपने आप को प्रकट कर के राजा और राजकुमार को गले से लगा लिया।

※ रतिदेव एक बड़े दानी राजा थे, उन्होंने बहुत अधिक यज्ञ किये थे। एक बार सब कुछ दे डालने पर इन्हें ४८ दिनतक पीने को जल भी न मिला। उनचासवें दिन वे कुछ खाने-पीने का आयोजन कर रहे थे कि क्रम से एक ब्राह्मण, एक शूद्र और कुत्ते को लिए हुए एक अतिथि आ पहुँचे। सब सामान उन्हीं के आतिथ्य में समाप्त होगया। केवल जल बच रहा। उसे पीने के लिए ज्योंही उन्होंने हाथ उठाया त्योंही एक प्यासा चाण्डाल वहाँ दिखाई दिया। राजा ने वह जल भी

अंत में भगवान् ने प्रसन्न हो उन्हें मोक्ष दिया।

अतिथि-सत्कार मे कमी न की और दूसरे को तृप्त करके जिन्होंने अपनी तृप्ति मानी ऐसे रतिदेव के समान अतिथि को तृप्त करने वाले राजा किस देश ने पैदा किये हैं।

१६ आमिष दिया अपना—आमिष=मांस । श्येन=बाज़ अस्थियाँ=हड्डियाँ।

जिन्होंने अपना मॉस बाज़ के खाने के लिए दे दिया जो अपने सत्य की रक्षा के लिए चांडाल के हाथ बिक गये थे, जिन्होने दूसरों का कल्याण समझ कर अपनी हड्डियाँ दे दीं ऐसे शिवि* हरिश्चन्द्र† और दधीचि‡ के समान दानी और किस देश में होते रहे हैं।

---

*शिवि की कहानी पृष्ठ ३५ पर देखिये।

†हरिश्चन्द्र की कथा प्रसिद्ध है।

‡राक्षसों से अत्यन्त सताये हुए देवता ब्रह्मा के पास पहुँचे और कहने लगे, भगवान् वृत्र राक्षस ने हमें बड़ा व्याकुल कर रखा है कोई उपाय बतलाइये। ब्रह्मा ने कहा—हे इन्द्र! मत घबड़ाओ मैं समझता हूँ कि वृत्र राक्षस का संहार करना तनिक टेढ़ी खीर है परन्तु उसका केवल एक ही उपाय है और वह यह कि ऋषि दधीचि की—जो निष्काम भाव से घोर तपस्या कर रहे हैं—अस्थियों से एक अस्त्र निर्मित करो और उस से ही वह राक्षस मारा जा सकता है। इस पर सब देवता ऋषि दधीचि के पास पहुँचे और उन्हें सब वृत्तांत सुना उन्होंने अपनी अभिलाषा प्रकटकी। कहते हैं कि बिना किसी सङ्कोच के उस त्यागी ऋषिने देवताओं की रक्षा के लिये अपनी [illegible] कर दे दीं।

४ कोई पास न रहने—अगर कोई पास न भी रहे तो भी मनुष्य का मन चुप नहीं रहता। वह अपने आपकी ही सुनता रहता है और अपने आप से कुछ कहता रहता है। बीच बीच में इधर उधर अपनी प्रसन्न दृष्टि डाल कर वह धीर धनुर्धर मन ही मन नई नई बातें करता है।

५ क्या ही स्वच्छ चाँदनी—निस्तब्ध=शान्त, मौन। गंधवह= गंध ले जाने वाली, वायु। निरानन्द=बिना आनन्द के। नियति= भाग्य। कार्यकलाप=काम।

यह चाँदनी कैसी स्वच्छ है, रात कैसी सुनसान है, स्वच्छन्द, मन्द मन्द वायु बह रहा है, कौन सी दिशा बिना आनन्द के है? भाग्य-रूपी नटी के काम बन्द नहीं हैं, अब भी चल रहे हैं, पर वे कितने एकान्त भाव से, कितने शान्त और कितने चुप-चाप चल रहे हैं।

६ है बिखेर देती वसुन्धरा—वसुन्धरा=पृथ्वी। रवि=सूर्य। विरामदायिनी=आराम देने वाली।

सबके सो जाने पर पृथिवी (ओस के रूप मे) मोती बिखेर देती है, और सवेरा होने पर सदा सूर्य उसको बटोर लेता है, (सुबह होने पर सूर्य की किरणों के पडने पर वह ओस सूख जाती है इस पर कवि कहता है कि सूर्य अपने हाथों से उन ओस-रूपी मोतियों को बटोर लेता है) शाम हो जाने पर वह सूर्य अपने बटोरे हुए मोती (तारों के रूप में) आराम देने वाली संध्या को दे जाता है, जिससे, (उन मोती रूपी तारों से) उस सन्ध्या का काला शरीर नया रूप दिखाता है।

७ तेरह वर्ष व्यतीत—आर्त=दुखी।

तेरह वर्ष बीत चुके हैं पर यह मानों कल की ही बात

है जब कि हमको जंगल में आते देख पिता जी दुःखी तथा मूर्छित हुए थे। अब वह समय निकट ही है जब कि अवधि (१४ साल वन में रहने की मियाद) पूरी हो जायगी, परन्तु इस बन्दे को इससे बढ़कर किस धन की प्राप्ति होगी ?

८ और आर्य को—और आर्य (बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी) को क्या मिलेगा ? क्यों कि राज्य का भार तो वह केवल प्रजा के लिए ही उठायेंगे। वे उस काम में व्यस्त (लगे) रहेंगे, और जबर-दस्ती हमको भी भूल जायँगे। पर लोकोपकार का ध्यान कर हमें इससे शोक नहीं होगा (अर्थात् रामचन्द्र जी हमको भूल गए हैं इसका शोक हमें इस लिये नहीं होगा क्योंकि हमें यह ख्याल रहेगा कि लोकोपकार में व्यस्त रहने के कारण ही उन्हें हमसे बात करने का समय नहीं मिलता) पर क्या यह मनुष्य लोक अपना कल्याण आप नहीं कर सकता ?

९ मझली मा ने क्या समझा—मझली माँ (कैकयी) ने क्या समझा था कि भरत के राजा होने से मैं राजमाता बन जाऊँगी और श्रीराम को निर्वासित कर (जंगल में भेज) राज्य में अपनी जड़ें जमा लूँगी। परंतु चित्रकूट में उसकी दयनीय हालत (जब भरत रामचन्द्र जी को वापस अयोध्या बुलाने आए थे, उस समय की कैकेयी की दयनीय दशा) देखकर करुणा भी थक जाती थी। सब उसे देखते थे (कि इस के कारण हमारे प्यारे रामचन्द्र जी को वनवास मिला है) पर वह (शरम के मारे) अपने आपको भी न देख सकती थी।

१० होता यदि राजत्व—यदि राज्य करना मात्र ही हमारे जीवन का उद्देश्य होता तो ` पूर्वज (वृद्धावस्था) में ६१-

को छोड कर वन का रास्ता क्यों लेते ? यदि जीवन में परिवर्तन ही को उन्नति समझा जाय तो हम वढते जाते हैं, परतु मुझे तो सीधे-सादे पुराने विचार ही पसन्द हैं।

११ जो हो, जहा आर्य रहते—कुछ भी हो आर्य रामचंद्र जहाँ रहते हैं वहीं वे राज्य करते हैं। उनके शासन में सब जगल में रहने वाले स्वच्छन्द घूमते हैं। शहरों में जिन पशु-पक्षियों को प्रयत्न से हम पिंजरो में बन्द करके रखते हैं यहाँ वे ही पशु-पक्षी भाभी (सीता) के साथ अपने आप ही प्रसन्नता से हिल गये हैं।

१२ आ आकर—विचित्र पशु-पक्षी यहाँ आ आकर पंचवटी की गहरी छाया मे दोपहरी विताते हैं और भाभी उनको भोजन देती है। सुन्दर चचल वालक मिल करके जिस तरह माँ को घेर कर रिझाते हैं, उसी तरह खेल खिलाकर वे सब भाभी को प्रसन्न करते हैं।

१३ गोदावरी नदी का तट—वह गोदावरी नदी का तट अब भी ताल दे रहा है और चचल जल अब भी कल-कल करके ताल ले रहा है। अब भी पत्ते नाच रहे हैं और फूल महक रहे हैं। चन्द्र और नक्षत्र लालच भरे लालसा से लपकते हैं।

१४ मुनियों का सत्सग—यहाँ उन मुनियो का सत्सङ्ग (साथ) है जिन्हें तत्त्व-ज्ञान (परमात्मा का ज्ञान) हो चुका है। उनसे नित्य नये विचित्र आख्यान (वृत्तान्त) सुनने को मिलते हैं। जिनका जीवन-रूपी फूल जितने ही कष्ट रूपी काँटों में खिला है, उन्हे यहाँ वहाँ, सब जगह उतनी ही वडाई रूपी सुगन्ध मिली है—अर्थात् जो जितना कष्ट उठाता है वह उतना ही यश पाता है।

१५ अपने पोधों में जय—निराती=खेत की घास-पात साफ़ करती।

जब भाभी भर-भर कर अपने पौधों में पानी देती हैं, और जब खुरपी लेकर अपने आप खेती की घास-पात साफ करती हैं, तब वह कितना गौरव, कितना सुख, और कितना सन्तोष पाती हैं ? सचमुच स्वावलम्बन की एक झलक पर कुबेर का सारा खज़ाना न्यौछावर है।

१६ सांसारिकता में मिलती—निस्पृहता=वासना का न होना, वासना का अभाव। अधिष्ठात्री=मालकिन। विकृति=विकार।

यहाँ सांसारिकता में वासनाओं (इच्छाओं) का विचित्र अभाव दिखाई देता है। अत्रि और अनुसूया के समान पवित्र गृहस्थी कहाँ होगी ? मानों यह संसार ही दूसरा है, यहाँ कृत्रिमता (बनावटीपन) का काम ही नहीं है। स्वयं प्रकृति ही यहाँ की स्वामिनी है और विकार का कहीं नाम नहीं है।

'बार बार तू आया'

बार बार तू—हिम-कंपित=अत्यन्तशीत से काँपता हुआ। कृशपाणि=दुबले-पतले हाथ। पसारे=फैलाए। बुभुक्षित=भूखा।

हे ईश्वर ! तू बारम्बार मेरे पास आया, पर मैं तुझे पहचान न सका। एक बार तू अत्यधिक सर्दी से काँपता हुआ, अपना दुबला-पतला हाथ फैलाए, भूखा बनकर मेरे दरवाजे पर पहुँचा, पर मैंने तुझे धक्का दे दिया (तेरा सत्कार नहीं किया)

दीन दृगों से—दीन-दृग=गरीब की आँख। सरस=रसीला। विकल=व्याकुल। कौतुक=खेल, विनोद।

दूसरी बार तू गरीब की आँखों से (आँसू बनकर) निकल पड़ा। उस समय तू बड़ा सरस (सुहावना) था और अत्यंत

फूल से तात्पर्य सासारिक सुख-भोग के पदार्थों से हैं। भौरों को सासारिक जीव समझिए। ससार में अनेक प्रकार की सुख-भोग की सामग्रियाँ हैं, जीव सहर्ष उनका उपभोग करता है।

वइ वड कर—पेडों पर पक्षी उड-उड कर बैठते हैं, फिर फुर फुर करते उड़ जाते हैं,इसका कुछ भी पता नहीं चलता। यह अच्छा इन्द्रजाल है।

पक्षी भी सांसारिक जीव को समझिए। संसार में अनेक आत्माएँ आकर जन्म ग्रहण करती हैं,फिर वे अन्त समय में चली जाती हैं। वे न तो कुछ लेकर आती हैं और न साथ में कुछ ले ही जाती हैं।

यह जो अम्ल—अम्ल=खट्टा। मधुर=मीठा।

यह जो खटमीठा फल ले आया है, उसके लिये कौन नहीं ललचाया। जिसने खाया वह भी पछताया और जिसने नहीं खाया वह भी पछताया। यह विचित्र इन्द्रजाल है।

अम्ल-मधुर फल सासारिक सुख-दु ख हैं। जिसके ऊपर सुख-दु ख पडता है वह भी पछताता है और जो इन्हें नहीं अनुभव करता वह इनका अनुभव न करने के लिये पछताता रहता है।

पहले के पत्ते—नवदल=नये पत्ते।

संसार रूपी वृक्ष के पुराने पत्ते झड जाते हैं, वे उड-उड़ कर गिर पडते हैं और उसमें रत्न की तरह नये पत्ते लगते हैं। पत्तों के गिरने और लगने का यह क्रम किसे अच्छा नहीं लगता।

पत्तों का झडना सांसारिक परिवर्तन है। पुरानी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, उनके स्थान पर नई-वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, यही ससार का क्रम है।

फल में स्वाद—कुसुम=फूल। मूल=जड। द्रुम=वृक्ष।

फल में स्वाद मिलता है, फूलों से सुगन्ध आती है, पर इस वृक्ष की जड का कहीं पता नहीं चलता। हे भगवन्! आप क्या कह रहे हैं कि वह जड तुम्हीं में है, हे राम! यह आपकी अद्भुत माया है।

इस ससार-रूपी वृक्ष के फलों (उपभोग्य वस्तुओं—शरीर आदि) में स्वाद, फूलों में सुगध तो जान पडती है, पर यह पता नहीं कि इसकी जड कहाँ है? इसकी जड मनुष्य के भीतर आत्मारूप में ही विराजमान है, वह वस्तुत परमात्मा का ही अश है। कवि यह दिखलाना चाहता है कि ससार जादूगर के खेल की भाँति अज्ञेय है। हम खेल देखते हैं पर उसका कुछ भी रहस्य नहीं समझ पाते। ससार के रहस्य का पता किसने लगाया है?

जयशंकरप्रसाद

किरण

किरण—सरसिज=कमल। किञ्जल्क=कमलके फूल का पराग।

हे किरण, तुम आज क्यों फैल रही हो, किस के प्रेम में रँगी हो और स्वर्ण के कमल के पराग के समान तुम पराग के परमाणु क्यों उडाती फिरती हो?

धरा—तुम पृथिवी पर प्रार्थना के समान नीचे झुकी हुई, मीठी बाँसुरी के समान हो फिर भी शान्त हो। किसी अपरिचित ससार की व्याकुलता का सन्देश लाने वाली दैव-दूतिका के समान तुम कौन हो?

अरुन-शिशु—अरुनशिशु=बालसूर्य। कान्त=सुन्दर।

अश्रान्त=वे थके।

बालसूर्य के मुख पर सानन्द सुन्दर घुँघराली सुनहली लटा जैसी उषा के आंचल मे बैठके नाचने वाली तुम कौन हो ?

भल उस— भाल=मस्तक।

हे किरण ! उस (बालसूर्य के) भोले मुख को छोड कर अब किसका मस्तक चूमने लगी हो ! यह तुम्हारा कैसा खेल है, कैसा नाच है, कौन तुम्हारे साथ साथ ताल दे रहा है ?

कोकनद—कोकनद=लाल कमल। तरल=द्रव, चंचल।

लालकमल के रस की धारा के समान चंचल ! तुम संसार में किस ओर बहती हो ! संसार में सुन्दर तथा सरल लहर उठा कर तुम प्रकृति को बहुत आनन्द देती हो।

स्वर्ग के —सूत्र=सूत। ततु=तार। भूलोक=पृथिवी। विरज= रज (दोष) रहित, निर्दोष। विशोक=शोक (दु:ख,रज) के बिना।

स्वर्ग के ततु—स्वर्ग के तार के समान तुम कौन हो जो उस से पृथिवी को मिला रही हो। (पृथिवी और स्वर्ग का) आपस में कैसा सम्बन्ध जोड रही हो ? क्या पृथिवी को भी (स्वर्ग के समान ही) दोष तथा दु:ख से रहित कर दोगी ?

चपल ठहरो—शून्य=आकाश। अनत=जिस का अन्त न हो, असीम। सुमन=फूल।

हे चपल किरण ! ठहरो कुछ आराम करलो, तुम आकाश का असीम रास्ता तय कर चुकी हो। सवेरे की सूर्य की किरणें जब संसार में दिखाई देती हैं तब कलियें खिल उठती हैं उसी को ध्यान में रख कर कवि कहता है। किरण ! अब तुम फूलों के मन्दिर के द्वार खोलो अर्थात् बंद कलियों को खिलाओ और फिर वहाँ सोया हुआ वसंत जाग उठे।

बदरीनाथ भट्ट

सूरदास

सूरदास को कौन अधा कह सकता है, क्या जो लोक (सारे ससार) को आलोकित (प्रकाशित) करता है वही अन्धा है अर्थात् जिस महाकवि सूरदास ने प्रभुके ज्ञान से सब को प्रकाशित किया है क्या वह अन्धा है ? क्या प्रभु ने (तुम सूरदास को अन्धा बनाकर) प्रत्यक्ष दीपक के तले अन्धकार का रूप दिखाया है, 'दिया तले अँधेरा' इस कहावत को चरितार्थ किया है—नहीं, वरन् (तुम्हारे रूप द्वारा) उन्होने घोर (अज्ञान) अन्धकार में अलौकिक और अनूठा दिया दिखाया है। उस वनविहारी कृष्ण ने अपनी चकाचौंध से सब के नेत्र बिगाड दिये थे, किन्तु उसने ही तुमको अन्तर्दृष्टि (ज्ञान-चक्षु, हृदय की आँख) दी और तुम्हारी सब आड (परदा) दूर करदी। आँखों से हीन होने पर भी तुमने अथाह की थाह पा ली—उस अज्ञेय परमात्मा को जान लिया। हम नेत्रों—बाहिरी नेत्रों—सहित होते हुए भी अज्ञान के कारण भटकते रहते हैं और राह नहीं सूझता। कृष्ण ने तुम्हारी बाँह पकडी थी, अत तुम्हे ज़रा भी कठिनाई न हुई। तुम्हारे लिए कृष्ण ही सब दुनिया थे, तथा कृष्ण और तुम दोनों एक थे । भक्त भगवान का ही रूप होता है। जिस अदृश्य भगवान ने तुम्हें अधकूप से खींच कर तुम्हारा दुःख दूर किया

था * तुमने उसी भगवान को अपने हृदय में कैद कर लिया सचमुच तुम शूरवीर हो। कहीं भी सूर (सूरज) और श्याम (अंधेरे) का साथ न देखा गया था और न सुना गया था, अर्थात् जहाँ सूर्य होता है वहाँ अंधेरा कभी नहीं रहता, परन्तु तुमने वह भी हाथो हाथ कर दिखलाया, अर्थात् तुमने सूर (सूरदास) और श्याम (कृष्ण) का साथ दिखा दिया। (सूरदास की) हृदय रूपी बाँसुरी से अलंकार ध्वनि तथा रस से युक्त जो तान निकली वही हमारे लिये मधुर अलौकिक गान हो गये। पर भगवद्भक्ति के जिस तत्त्व को उसने सब

*सूरदास के अंधे होने के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं, कहते हैं कि एक दिन सूरदास एक सुंदरी की ओर एकटक बहुत देर तक देखते रहे, सुंदरी ने उन्हें लज्जित करने के लिए उनसे आकर पूछा—महाराज आपको क्या चाहिये? तब सूरदास को अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने उस सुन्दरी से वचन लेकर उससे कहा—मेरी इन आँखों ने अपराध किया है अतः तुम इनको सुई से फोड़ डालो। वचन-बद्ध सुंदरी ने वैसा ही किया। अंधे सूरदास प्रभुभक्ति में इधर उधर गाते फिरते थे। एक दिन वे इधर उधर फिरते हुए एक औंधे कुएँ में गिर पड़े और ६ दिन तक उस में पड़े रहे। सातवें दिन भगवान कृष्णरूप में इनके सामने प्रकट हुए और दर्शन देकर तथा इनको बाँह पकड़ कर उन्होंने उस कुएँ से निकाला। तब सूरदास ने उनसे वर माँगा कि जिन नेत्रों से मैंने भगवान को देखा है उनसे मैं और किसी को न देखूँ। अतः कुएँ से निकलने के बाद सूरदास फिर ज्यों के त्यों अंधे होगये।

स्थानों पर फैलाया, उसे भूल कर हम और के और ही हो गये हैं।

मेरी त्रिभूति

क्या तुम मेरा नाम पूछते हो ? जड और चेतन सब मेरा ललाम (सुन्दर) रूप दिखा रहे हैं। जल, स्थल, अनल (आग) अनिल (वायु) और गगन (आकाश) इन सब में मैं व्याप्त हूँ। समस्त ससार का बीज-रूप जो ओंकार है वह भी मुझमें समाप्त है। मैं सानन्द आत्म-ज्ञानकी नाव मे बैठा हूँ, और ससाररूपी सागर में स्वच्छद विचरता हूँ—आत्मा का ज्ञान होजाने के कारण अब कोई बधन मुझपर नहीं रहा। ससार-रूपी जल में मैं कमल हूँ, और ससार-रूपी बादलो मे मैं आदित्य (सूर्य) हूँ। और ससार-रूपी घड़े या मठ में मैं व्योम (आकाश) हूँ, इस तरह मैं अद्भुत अविनाशी (अक्षर) और नित्य हूँ अर्थात् ब्रह्म हूँ। वदाती लोग जीव को ब्रह्म ही समझते हैं वे 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात मैं ही ब्रह्म हूँ, कहा करते हैं, यहाँ भी कवि उसी पक्ष का समर्थन करता है। मैंने (अविनाशी परमात्मा ने) केवल खिलवाड करने को ही मनुष्य का शरीर धारण किया है, यह कोई न समझ सका कि तिल की ओट में पहाड है, अर्थात मनुष्य रूप मे मैं परमात्मा हूँ। कल्पना (भावना) के गले अहंकार (मैं और मेरापन) का हार डाल कर मैं स्वयं ही मायामय ससार बन बैठा हूँ। वेदातियों का मत है कि यह ससार, जीव और ब्रह्म सब एक ही हैं, माया-युक्त ब्रह्म ही जीव है, अर्थात् माया के कारण जब ब्रह्म में अहंकार का (मैं और 'मेरा') भाव आ जाता है तब वह परमात्मा ही जीवात्मा हो जाता है, और जैसे रस्सी में सांप की भावना होती है, ऐसे ही

परमात्मा मे ही जीवात्मा का भान होने लगता है इसी भाव को लेकर कवि कहता है कि अहकार का भाव धारण करके मैं ही ब्रह्म मायायुक्त ससार वन बैठा हूँ।

नया फूल

इस उपवन मे नया फूल खिला है। सब वृक्ष प्रसन्न हो रहे हैं, और बेले मन में हँसती हैं (दूसरी पक्ति के आरम्भ में 'हो रहे' के स्थान पर 'मुदित हो रहे' होना चाहिये। मूल में 'मुदित' शब्द छूट गया है) सवेरे की वायु के लगते ही फूल ने बहुत सुख पाया और पहली दशा भूल गया। अब उसने जिधर देखा उधर प्रेम की थाली परोसी हुई देखी। वह अनूठा रूप लेकर आया है और उसने मधुर सुगन्धि फैलाई है। इस तरह उसने सब के हृदय में प्रभुता की ध्वजा उडाई है। सब के हृदय देश में घर कर लिया है और एक ऐसी लहर चलाई कि सब को जीत लिया। रोकर और हँस कर सब तरह से उसने अपनी बात बना ली। रोने का मतलब है जब पहली अवस्था मे फूल अभी कली के रूप में था, तब उस पर ओस की बूँदें पडती थीं, वे मानों उसके आँसू थे और हँस अर्थात् खिल कर।

तुलसीदास और रामायण

हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों—गीता, पुराण, रामायण, महाभारत आदि—में गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण का एक विशेष स्थान है। इसके कथानक के नायक स्वयं ईश्वर के अवतार भगवान् रामचन्द्र हैं, और स्थान २ पर इसमें

भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य के उपदेशो का अनूठा समावेश पाया जाता है। वे सासारिक पुरुष जो वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों को नहीं समझ सकते, बडी श्रद्धा-भक्ति के साथ इसका अध्ययन करते हैं, भक्त हिन्दू इसका नित्य पाठ करते हैं।

१ सुलभ—गोस्वामी तुलसीदास (रामायण बना कर) ब्रह्म का ज्ञान सब के लिए सुलभ कर गये हैं अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान देने वाले वेदादि ग्रन्थो का समझना सासारिक पुरुषों के लिए बड़ा कठिन था पर रामायण द्वारा वही ज्ञान सुलभ हो गया है। इस तरह ससाररूपी सागर को तरने के लिए उन्होंने रामनाम रूपी जहाज़ बना दिया है।

२ दृश्य-अदृश्य—दृश्य=आँखों द्वारा दिखाई देने वाला (साकार)। अदृश्य=आँखों से दिखाई न देने वाला (निराकार)।

साकार और निराकार प्रभु की भक्ति, रामचन्द्र और सीता आदि के अलौकिक चरित्र और रावण, कुम्भकर्ण आदि के लौकिक चरित्र सब एक जगह (रामायण) मे ही आगए हैं। भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य सब एक ही गाँव में बस गए हैं अर्थात् एक ही पुस्तक मे भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का समावेश है।

३ स्वार्थ और—(रामायण द्वारा गोस्वामी जी ने) स्वार्थ तथा परमार्थ—मोक्ष—दोनों प्राप्त कराये, जिससे निस्सार (फोका) ससार भी सारयुक्त होगया और अपने अनुभवकी कुंजी से उन्होंने अगम (कठिनता से प्राप्त होने वाली) मुक्ति का द्वार खोल दिया*।

* कहते हैं, कि महात्मा तुलसीदास का अपनी पत्नी से बड़ा प्रेम था। एक बार उनकी स्त्री उनसे बिना पूछे अपने मायके चली

४ मोह शिखर—मोहरूपी पर्वत की चोटी पर फँसे हुए आदमियों के पार उतरने के लिए उन्होने रामायणरूपी सीढी तैयार कर दी है और रामनाम का आधार (सहारा) होने के कारण गिरने का ज़रा भी डर नहीं रहा।

५ रोम रोम—हे गोस्वामी! तुम्हारे रोम रोम में रामरूप ससार रमा हुआ है अर्थात् तुम राममय हो गये हो। हे भक्ति और प्रेम के अवतार तुलसीदास! तुम बार बार धन्य हो—स्तुत्य हो।



गयी। तुलसीदास भी उसके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचे। इस पर स्त्री को लज्जा आई और उसने कहा—

लाज न लागत आपु को दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चरममय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ होति न तौ भवभीति॥

प्रेमी तुलसीदास उसी दिन से लौकिक प्रेम से विरत हो गए, और उनकी वह प्रेमधारा भगवान् के चरणों की ओर बह निकली। उसी प्रेम के कारण उन्होंने स्वयं मुक्ति पाई और अपने अनुभव द्वारा सांसारिक लोगों को भी मुक्ति का सीधा मार्ग दिखा दिया।

वियोगीहरि

उत्साह तरंग

१ जयतु कस करि—काल=यमराज। मधु=एक दैत्य जिसको विष्णु ने मारा था।

कस-रूपी हाथी के लिए सिंह के समान, मधु नामक राक्षस के शत्रु और केशी राक्षस के लिए काल के समान, तथा कालिय नाग के घमण्ड को चूर्ण करने वाले कृपालु कृष्ण भगवान् तुम्हारी जय हो।

२ परिनामँहु—लोकोत्तर=अलौकिक। उछाह=उत्साह। अमद=अधिक।

जो परिणाम मे (अत में) अलौकिक आनद देता है वह अत्यधिक उत्साह से युक्त सुन्दर वीर रस ही रसराज है।

३ छाँडि वीररस—वीर रस को छोडकर अब हमें कोई दूसरा रस पसद नहीं आता। जैसे सावन के अधे को सारा ससार हरा ही हरा प्रतीत होता है।

४ कहा करौं माधुर्य—माधुर्य=लावण्य। ज्योति=सूर्य शक्ति।

बिना ओज (बल) के सुकुमार सुदर माधुर्य (लावण्य) को लेकर क्या करूगा। सुदर कमलरूपी नेत्र भी सूर्य-रूपी शक्ति के उदय हुए बिना नहीं खिलते।

५. खड खड है—बरु=चाहे। पेंड=डग, कदम। मेंड=लकीर, सीमा।

लडता हुआ शूरमा चाहे टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो जाय पर पीछे कदम नहीं देता। रणक्षेत्र में लडता हुआ वह मर जाता है पर अपने खेत की हद नहीं छोडता।

६ खल खडन—खडन=नष्ट करने वाला । मडन=पुष्ट करने वाला । सुहृद=अच्छे हृदय वाला ।

दुष्टों का नाश करने वाला, सज्जनो को पुष्ट करने वाला, सरल,ज्ञानयुक्त, अच्छे हृदय वाला, तथा अत्यधिक गुणों से युक्त गभीर, युद्ध मे शूरवीर लाख में से कोई एक ही होता है।

७ खल-घालक—घालक=मारने वाला, अत करने वाला। प्रकृत=स्वाभाविक ।

दुष्टो का अन्त करने वाला, सज्जनो को बचाने वाला, अच्छे हृदय वाला, दयावाला गम्भीर और रण मे धैर्य रखने वाला, स्वाभाविक शूरवीर कहीं करोडों मे एक होता है ।

८ मुँह माँगे—रणक्षेत्र में सूरमा शत्रु के लिए मुँह माँगा दान देता है। (किन्तु एक शर्त है) वह सिर का दान ही देता है पीठ का दान नहीं देता—अर्थात् सिर चाहे कटवा दे पीठ नहीं दिखाता ।

९ दयाधर्म—हे नृप शिवि, तूने दयाधर्म को सब धर्मो का सार ठीक ठीक समझा था और तेरे दान पर सैकड़ों बलि भी न्यौछावर हैं। बलि ने तो केवल अपना धन और पृथिवी दी थी, तुमने तो अपना तन भी दे दिया।

१० तूँ ही या नर—हे दयाशूर राजा शिवि, तू ही दयारूपी तलवार के भेद को समझने वाला है और हे प्यारे, तू ही इस मानव-शरीर का अनुपम जौहरी है, इसकी कदर जानने वाला है।

११ सुन्दर सरय—विगस्यौ=खिला है । तडाग=तालाब । सरोज=कमल ।

धर्म-रूपी तालाब में सुन्दर सत्य-रूपी कमल खिला है। उसमें हरिश्चन्द्र का पवित्र पराग युग-युग में चारों ओर सुगंध फैला रहा है।

१२ जौ न जन्म--जो इस संसार में हरिश्चन्द्र का जन्म नहीं होता, तो युगयुगान्तर तक असत्य की (झूठ की) न मिटने वाली अँधेरी छाया बनी रहती।

१३ इत गाँधी—इधर महात्मा गाँधी और उधर सत्य दोनों आपस में मिलना चाहते हैं, यह उस सत्य को नहीं छोड़ता और वह सत्य महात्मा गाँधी को नहीं छोडता।

१४ धनि तरि तप—हे महात्मा गाँधी, तपस्या में तेरी धीरता धन्य है, और तेरे गुणों का समूह धन्य है। इस कलि-युग में तू ही केवल एक सच्चा सत्याग्रही वीर है।

१५ ---नहिं विचल्यो—दु खद्वन्द=अनेक दु ख।

अनेक असह्य दु ख सह कर भी हे महात्मा गाँधी, तू सत्य के रास्ते से विचलित नहीं हुआ, सो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कलिकाल में गाँधी का रूप धारण कर हरिश्चन्द्र फिर से प्रकट हुए हैं।

१६ हँसत हँसत—हँसते हँसते अपने धर्म पर अपना सिर चढा कर और धर्मरूपी युद्ध में मर कर हकीकतराय अमर हो गया। यद्यपि उसका नश्वर शरीर नष्ट हो गया पर नाम अमर हो गया।

१७ सुरतरु के—सुरतरु=देवताओं का वृक्ष, कल्पवृक्ष। चिंतामणि=एक मणि जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि उससे जो माँगा जाय वही मिल जाता। सुमेरु=पुराणों के अनुसार एक सोने का पहाड।

कल्पवृक्ष और चिंतामणि का ढेर लेकर क्या करोगे दधीचि मुनि की एक हड्डी पर करोड़ों सुमेरु भी वार दो—अर्थात् उस एक हड्डी में ही ऐसा बल था जिसने देवराज इन्द्र और देवताओं की रक्षा की थी। (कथा पहले आ चुकी है)

१८ करि कादर सों मित्रता—पुनीत=पवित्र। मंगल=कल्याण।

हे मित्र ! कायरों से मित्रता करने का क्या फल है ? (कुछ नहीं) युद्धवीर के प्रति शत्रुता होना भी पवित्र और कल्याणकारी है। युद्धवीर से लड़ते-लड़ते रण में मृत्यु होगी, तो स्वर्ग मिलेगा।

१९ कहहु कौन—सागर=समुद्र।

हे बल के समुद्र, तुम्हें कायर कौन बनाता है ? युद्ध में हड़बड़ा कर और पीठ दिखाकर भागना सबके बस का नहीं है, अर्थात् सब नहीं कर सकते।

२० मति मन मानिक—अपना मनरूपी माणिक्य कभी कुटिल कायरों के हाथ न सौंपो। अच्छे जौहरी वे ही हैं जिनके धड़ पर सिर नहीं हैं अर्थात् जिन्हें अपने सिर की परवाह नहीं है।

२१ औघट घाट—समर (रणक्षेत्र) रूपी अपार धारा (नदी) में कृपाण (तलवार) रूपी दुर्गम घाट है। जो इसके सन्मुख जाता है वह तो तर आता है और जो विमुख रहता है वह मँझधार में रह जाता है। भाव यह है युद्ध-भूमि में जो डरता है वही मारा जाता है। निडर शूरवीर या तो शत्रु को ही मार लेता है और जो कहीं मर भी जाय तो सदा के लिए उसका यश रह जाता है।

२२ पैरिपार असि—नाखि=लाँघकर।

तलवार-रूपी धार को तैरकर पार करके और युद्धरूपी भयानक नद को लाँघकर सूर्य के घेरे को भेदकर हे रणधीर, तू अब कहाँ चला है?

२३. करतु काल सों—करवाल=तलवार। फल-माल=सुन्दर माला।

काल (मृत्यु) से लाखों में से कोई एक ही माई का लाल लडता है (लडने का साहस रखता है)। बताओ, कितने ऐसे हैं जो तलवार को गले की सुंदर माला बनाना पसन्द करते हैं?

२४ धन्य भीम—हे रणधीर भीम, तू धन्य है जिसने शत्रु की छाती पर पाँव रखकर, इन मूँछों को ताव देकर, अँजुलियों को भरकर शोणित (खून) पिया है।

२५ धन्य कर्ण—कंदुक=गेंद। उछारे= उछाले।

हे कर्ण, तू धन्य है, जिसने शत्रु के खून से युद्ध के कुड को भर दिया है, और उछलकर शत्रुओं के सिरो को गेंद बनाकर अत्यन्त चाव से उछाल दिया है।

२६ प्राण हथेरी पर—ओज=बल, प्रताप। तबर=कुल्हाडी की तरह का लडाई एक का हथियार,परसा। जूझिवे=लडने को।

प्राणो को हथेली पर रखकर (अर्थात् प्राण जाने की परवाह न कर) ओज-रूपी शराब को पी कर और परसा, तीर तथा तलवार लेकर नौजवान लडने को चले हैं।

२७ छत्रिय छत्रिय—क्षत्रिय क्षत्रिय कहने से कोई क्षत्रिय नहीं होता। जो खड्ग पर अपना सिर चढा सके वही असली क्षत्रिय है।

२८ जोरि नाम सग—नाम के साथ 'सिंह' पद जोडकर सिंहको ही बदनाम कर दिया है। गीदड के काम करके कोई सिंह कैसे हो सकता है?

२९ वह दिनु वह छिनु—वह दिन, वह क्षण और वह घडी फिर फिर नहीं आते जबकि ये प्राणरूपी हस हिलोरें ले लेकर युद्ध रूपी मानसरोवर मे नहाते हैं।

३० कादर तो जीवत—कायर लोग तो दिन में हज़ार वार मरते और पैदा होते हैं परन्तु शूरवीर के प्राणरूपी पक्षी एक ही वार उडते हैं। अर्थात् कायर फिज़ूल डर के मारे ही मरे जाते हैं।

३१ अरे फिरत—अरे वावले ! अनेक तीर्थों पर व्यर्थ क्यों भटकता फिरता है? माथे पर स्वाभाविक शूरवीरों के पैर की धूलि को क्यो नहीं धारण करता ? (भाव यह है कि वीरों के पैर की धूल से अधिक पवित्र और क्या चीज़ होगी।

३२ तह पुस्कर—सुरसरि=गगा। कवध=धड।

वहीं पुष्कर (अजमेर के पास का पवित्र तीर्थ) है, वहीं गगा है वहीं तीर्थ, तप, और यज्ञ का स्थान है तथा वहीं प्रयागराज है जहाँ कि शूरवीर का धड (इस दुनियाँ से) उठ गया है—अर्थात् जहाँ शूरवीर मरा है।

३३ कै कृपाण—अनल=अग्नि। ठाट=समूह।

वीर-पत्नियों के नहाने के ये दो ही घाट (स्थान) हैं, या तो तलवार की धार और या अग्नि कुण्ड का समूह (चिता) ।

३४ सुभट सीस—शूरवीरों के सिर के खून से सनी हुई युद्ध की भूमि तू धन्य है। तेरे समान ससार में तारने वाला और कोई तीर्थ तीनो लोकों में नहीं है।

३५ नमो नमो कुरुक्षेत—प्रतिरूप=मूर्त्ति।

हे (युद्धभूमि) कुरुक्षेत्र, तुझे नमस्कार है। तेरी महिमा अकथनीय है, और अद्भुत है। तेरा एक एक कण हज़ारों तीर्थों का मूर्त्ति रूप दिखाई देता है। अर्थात् तेरा एक एक कण हज़ारों तीर्थों के समान है।

३६. जो जन लोभी—जो लोग सिर के लोभी हैं, सिर नहीं दे सकते वे सदा दु खी और गुलाम रहते हैं बिना सिर चढ़ाये—बिना कुर्बानी किये—ससार में कहो कौन स्वाधीन हुआ है ?

३७ एक और—अकोर भरि लेहु=गोद भर लो, आलिंगन कर लो।

एक ओर स्वाधीनता है और दूसरी ओर है सिर। दोनों मे से जो तुम्हें अच्छा लगता है, उस आलिंगन कर लो, उसे स्वीकार कर लो। अर्थात् यदि स्वतन्त्रता चाहते हो तो सिर देना पडेगा और सिर से प्रेम है तो गुलाम रहना पडेगा।

३८ चाहो जो स्वाधीनता—जो स्वधीनता—स्वतत्रता चाहते हो तो मन लगा कर यह मत्र सुन लो कि वलिवेदी पर अपने ही हाथों से अपने सिर को चढ़ा दो।

३९ सौंप्यो स्वामिहि—जन=सेना। हय=घोडा। गय=गज, हाथी। ठौर=स्थान, भूमि।

स्वामी को किसी ने सेना, किसी ने धन, किसी ने घोडे, किसी ने हाथी और किसी ने भूमि सौंपी, परन्तु वह स्वामी को अपना सिर दे कर (स्वामी पर न्यौछावर होकर), सहज म ही सबका सिरमौर होगया है।

४० लै बल विक्रम—हे कवि! तू बल और विक्रम की बीन लेकर ऐसी तान क्यों नहीं छेडता जिसे सुनते ही धरा (पृथ्वी), मेरु (पर्वत), चन्द्रमा और सूर्य सब डोल उठें।

४१ लै निज तत्री—तत्री=वीणा। अभग=जिसका क्रम न टूटे। धरा=पृथ्वी। तुग=ऊँची।

हे कवि, तू अपनी वीणा लेकर वह न टूटने वाला राग छेड़ दे, (जिसे सुनकर) पृथ्वी से आकाश तक की ऊँची ओज की तरगे उठने लगें।

४२.अब नख सिख--अब तो कवि नख-शिख वर्णन के (सुन्दरियों के नख के लेकर शिखा तक के सब अंगो के वर्णन के) और शृंगार रस के सुन्दर कवित्त पढते हैं। आज लाल भूषण के समान जातीय कवि नहीं रहे। महा कवि भूषण शिवाजी के दरबार में कवि थे, उनकी वीररस की कविता हिन्दी-विलास के पाठक देख चुके हैं। कविवर लाल का पूरा नाम गोरे लाल पुरोहित था, ये महाराज छत्रसाल के दरबार मे रहते थे। बुंदेलखंड में प्रसिद्ध है, कि ये महाराज छत्रसाल के साथ किसी युद्ध में गये थे, और वहीं मारे गये। इनका 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है।

४३ शिवा सुजस—शिवा जी के यशरूपी कमल के सुरस पर अनन्य भक्त (अधिक लीन) भौरा, रसों के अलंकार (सर्वोत्कृष्ट रस) वीर रस की सुन्दरता बढाने वाला, और सुकवियो का भूषण (सुकवियों में श्रेष्ठ) भूषण कवि धन्य है।

४४ रिपुगण सुनि—जिस भूषण की रसना (जिह्वा) पर चण्डिका (दुर्गा) सिद्ध रहती है, उस भूषण की कविता सुन शत्रुगण (सरविद्ध) तीर से घायल क्यों न हो जायँ।

४५ एकछत्र वन—पचानन=सिंह। एक छत्र=जिसमें और किसी का राज्य वा अधिकार नहीं, निष्कंटक। अधिप=राजा।

शेर ही जंगल का एक छत्र राजा है, हाथी के खून से अपने आप ही उस ने अपना राज्याभिषेक कर लिया है।

४६ काँपतु कोपित केहरी—क्रुद्ध शेर विकराल मुँह बाये काँप रहा है (क्रोध की अधिकता मे सब काँपने लगते हैं) वही मानों लाल लाल अंगारे जल रहे है अथवा प्रलयकाल के लाल (सूर्य) चमक रहे हैं।

४७ छिन्न भिन्न है—करीन्द्र=हाथियों का राजा। कुभ=गडस्थल। दार्यो=फाड दिया।

मस्त हाथी के मद का स्वाद लेने वाले भौंरों की भीड छिन्न भिन्न हो कर क्यों उड रही है ? मालूम पडता है कि कहीं वीर शेर ने हाथियों के राजा का गडस्थल फाड दिया।

४८ न पराधीन सब-बल और वीर्य से हीन ये सब तो पराधीन दिखाई देते हैं, हे शेर इस जगल मे (बल और वीर्य वाला) एक तू ही स्वाधीन है।

४९ जा तन वारिधि—अतनु=बिना शरीर वाला,* कामदेव। वारिधि=समुद्र। तामधि=उस में।

जिसके शरीररूपी समुद्र में सदा काम की तरग उठती रहती है अर्थात् जो सदा काम वासना मे फसा रहता है, बताओ, उसमें युद्ध की उमग कैसे उठेगी ?

५०. होती लाख में—अनल=आग के रग की, आग के समान। दुवन=शत्रु। दीह=दीर्घ।

आग के रङ्ग की लाखों में कोई वह एक ही आँख

---

* एक बार कामदेव ने शिवजी के मन में कामविकार पैदा कर उनकी समाधि भग करनी चाही। और उन पर अपने कुसुम-बाण चलाए। इस पर क्रुद्ध हो शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोल उसे भस्म कर दिया। तब उसकी स्त्री रति विधवा होकर विलाप करने लगी। अन्त में कृपालु शिवजी ने कहा कि कामदेव अमर होगा पर अब से वह बिना शरीर के रहेगा, और जीवों के मन में उसका निवास होगा। इसलिए उसे अतनु या मनोज कहते है।

होती है जो बड़े भारी शत्रु-समूह को देखते ही जला कर राख कर देती है।

५१. सुभट नयन—सुभट=वीर । अगारु=अंगारा । उछाह=उत्साह।

वीरों की आँखें अगारे के समान हैं पर उनमें एक आश्चर्य दिखाई देता है कि ज्यों-ज्यों उन पर उत्साह-रूपी जल पड़ता है त्यों-त्यो वे धधकती जाती हैं।

५२ जाव फूटि—रति रग-रली=कामक्रीडा । अलसौंही=आलस्ययुक्त।

कामक्रीडा के कारण आलस्ययुक्त वे आँखें फूट जायँ। और स्वाभाविक ओज (पराक्रम) की ज्वाला से जलती हुई (अर्थात् ओज युक्त) आँख ही लाखो युग जीती रहे।

५३ सुरत रग—सुरत=रतिक्रीडा। दृगनि=आँखें।

आँखों मे रतिक्रीडा का रग कहाँ और रण ओज (युद्ध के पराक्रम) की कान्ति कहाँ ? इससे (अर्थात् पराक्रम की कान्ति से) तो मुख उज्ज्वल होता है और उस (क्रीडा) से मुख काला होता है।

५४ वसति आप—छोटे से शरीर वाली यह तलवार आप तो छोटे से म्यान में रहती है पर इसका अवदात (निर्मल) यश तीनों लोको में भी नहीं समाता।

५५. तड़ित और तलवार—तडित=बिजली। दुरि जात=छिप जाती है।

[illegible]ली और तलवार में समता किस तरह हो सकती है,

ज्यों ही यह तलवार दमक कर चमकती है, त्यों ही वह बिजली छिप जाती है।

५६. वह नांगी तलवार—वह नगी तलवार भी (जो पहले युद्ध मे नगी ही दौडती फिरती थी) अब लज्जायुक्त स्त्री हो गई है। उसने म्यान से मुख बाहर नहीं निकाला,मानों परदे वाली हो गई हैं।

५७ इत सर—सर=बाण। सारँग=धनुप। अँगना=स्त्री।

इधर बाण धनुप पर चढता है और चढ कर रण का राग गाता है। उधर शत्रु की स्त्रियों के अग से स्वाभाविक सोहाग के चिह्न उतर जाते हैं—अर्थात् बाण धनुप पर चढत ही शत्रुओं के प्राण हर लेता है।

५८ गो घावक वा—(दुष्यत के पुत्र भरत के बारे मे प्रसिद्ध हैं, कि वह शेर से खेला करता था। कवि ने उसी की वीरोक्ति का यहाँ वर्णन किया हैं)।

हे माँ, उस गौ को मरनेवाले शेर की पूँछ उखाड लूँगा। उसके तेज दाँतों को तोड दूँगा और उसकी मूँछ उखाड लूँगा,।

५९ प्रेम मरम जानै—कूर=क्रूर,निर्दय। मूर=मूल, मूल्य।

विपयी कायर और निर्दय प्रेम के रहस्य को क्या समझ सकता है, एक सच्चा शूरवीर ही रस के-प्रेम के-मूल्य को समझ सकता है। अर्थात् जो कायर अपने प्रियतम के लिए त्याग नहीं कर सकता, वह प्रेम के रस को क्या समझेगा, सच्चा रणशूर बात-बात में अपने प्रियतम के लिए सर्वस्व वार सकता है, अत वही प्रेम रहस्य जान सकता है।

६० रे विपयी—कपोत ब्रत=कबूतर कष्टके समय नहीं बोलता, केवल खुशी के समय गुटरगूँ-गुटरगूँ करता है। इसलिये चुपचाप

दूसरों के अत्याचारों को सहना, दूसरे के पहुँचाए हुए अत्याचारों पर चूँ भी न करना कपोत-व्रत कहाता है।

हे विषयी! काम-वासना में फँसे हुए व्यक्ति! अपने को प्रेमी कहाते तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आती! अरे बताओ तो सही आज कितने आदमी कपोत-व्रतको पालन करने वाले हैं, चुपचाप प्रेम-पीडा को सह सकने वाले हैं।

६१ सब तो साँचे—ढार=ढाँचा। प्रेम-मेंड-रखव.र=प्रेम के मार्ग की रक्षा करने वाला अर्थात् निभाने वाला

और सब तो एक ही सांचे में ढले हुए हैं पर ये दो उस ढाँचे में नहीं ढले—एक तो अत तक प्रेम निभाने वाला और-दूसरा सीस चढाने वाला।

६२ मथि मथि—अच्छर-निधि=पंडित।

पडित रट-रट कर मर गये पर कुछ भी सार नहीं निकला। एक प्रेमी और एक सूरमा ये दो ही भवसागर से पार हुए हैं।

६३ और अस्त्र केहि काम—जो प्रेम-रूपी अस्त्र साथ में हो तो और हथियार किस काम के, उनकी क्या जरूरत है? क्योंकि प्रेम रूपी रथ पर चढकर लडने वाले के हाथ में ही महारथियों के मस्तक हैं।

६४ खंड खंड ह्वै जाय—चाहे टुकडे-टुकडे हो जाना पर एक धर्म को न छोडना। हे लाल, तुम्हें इस तलवार की सौगंध है, कि कुल की लाज को पकडे रखना—कुल की लाज न गँवाना।

६५ कह्यौ माय—गहाय=पकडा कर। करवाल=तलवार। जनि=मत। पयोधरनु कौ=स्तनों का।

माता ने मुख चूम कर और हाथ में तलवार पकडा कर कहा कि हे लाल! मेरे स्तनों के दूध को न लजाना।

६६ चूर चूर ह्वै—अन्त तक चूर-चूर हो कर भी लाज

की रक्षा करना। माता के दूध और पिता की तलवार की आज ही परीक्षा है।

६७ लोट लोट—जिस पर लोट लोट कर तुम आज तक धूलि से लिपटते रहे हो अर्थात् जिसकी धूल मे तुम खेलते रहे हो हे वत्स, आज उस पृथ्वी-माता की लाज तुम्हारे हाथ में है।

६८ मिलत न पत्रा—पत्रा=पचाग,पत्री। सोधत=ठीक करते। कायर आदमियों को (लडने के लिए) पञ्चाग में कोई अच्छा दिन ही नहीं मिलता और इसलिए वे लडते नहीं। पर रण बाँकुरे वीर नक्षत्र, वार, तिथि और चन्द्र आदि ठीक नहीं करते, वे तो लडना ही जानते हैं।

६९ रहिहैं आज—हे हरि, अपने प्रण की लाज रखकर तुम को आज अस्त्र पकडवा कर ही रहूँगा! या तो अब यहाँ भीष्म ही रहेगा अथवा यदुराज तुम ही रहोगे, अर्थात् या तो भीष्म का प्रण रहेगा या यदुराज का ही।

७० इत पारथ रथ—पारथ=अर्जुन।

इधर अर्जुन के रथ के सारथी श्रीकृष्ण हैं, उधर रणवीर भीष्म हैं। दोनों प्रण के पालने वाले हैं अत एव दोनों ही तिल भर भी टालने से नहीं टलते।

७१ भानु अस्त लौं—यदि आज सूर्यास्त तक जयद्रथ जीता बच गया तो गाडीव को तोड-ताड कर मैं अर्जुन चिता जला कर अपने शरीर को भस्म कर दूँगा।

७२ कै न सक्यो—हे श्रीकृष्ण, जो आज अधम जयद्रथ के प्राण हरण न कर सका तो मैं अर्जुन नपुसक होकर गाण्डीव नहीं पकडूँगा।

७३ रूप न तौ लौं—मूलपुस्तक में पहली पक्ति में "प्रताप भुजहीन"

के स्थान पर 'प्रताप पुजहीन' छप गया है। अत इसका अर्थ इस तरह करना पडता है—मैं प्रताप पूजाहीन (पुजहीन)होकर तब तक मूँछ नहीं ऐठूँगा, जब तक चित्तौड गढ को स्वाधीन न कर लूँगा। पर यह अर्थ कुछ नहीं बनता, वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—जब तक मैं प्रताप चित्तौडगढ को स्वाधीन न कर लूँगा, तब तक मै भुजाओं से हीन होकर मूँछो को नहीं ऐठूँगा।

७४ महल नाहिं—मैं प्रताप महल में तब तक पैर नहीं रक्खूँगा, और कुटी बनाकर नहीं रहूँगा, जब तक दुबारा ध्वजा न फिरवा दूँगा।

७५ मिलियौं तहँ—परखति=प्रतीक्षा करते हुए। विसिख=बाण। पौन्ह=पहनकर। उर=हृदय।

हे प्रिये वहाँ—स्वर्ग में—प्रतीक्षा करते हुए मुझे मिलना, मैं सर्वस्व वार कर तुम्हें मिलूँगा। मैं बाणों का हार पहने होऊँगा, और तुम अग्नि की ज्वाला की माला हृदय में धारण करके आना।

७६ सुमृदु सिरीप—सिरीप-प्रसून=सिरों का फूल, यह बहुत ही कोमल होता है। प्रकृतवीर=स्वाभाविक वीर। हीय=हृदय।

स्वाभाविक वीर का हृदय कोमल सिरीप के फूल से भी अधिक कोमल और वज्र से अधिक कठोर होता है इसलिए उस का चित्र किसी ने नहीं खींचा किसी से नहीं खींचा जा सकता।

७७ झासी दुर्गम—झाँसी का दुर्गम दुर्ग धन्य है, उसकी महिमा असीमित और अद्भुत है, जहाँ चचला (लक्ष्मी—लक्ष्मी बाई) ने दुर्गा का रूप धारण कर अवतार लिया था।

७८ पराधीनता दु ख—पराधीनता की दु,खभरी रात काटे नहीं कटती। हाय, स्वतन्त्रता का पवित्र सवेरा अब कब होगा?

७९ अथयौ वीर्य—सुन्दर (भावन) भारतवर्ष में अब वीर्य और बल का सूर्य अस्त हो गया है। अब तो दु समयी अत्यधिक अँधेरी सध्या आ गई है।

८०. निजतासों—अब तो अपनेपन से शत्रुता है, और पराये पन से प्रीति है। अपने तो पराये, और पराये अपने हो गये हैं, हे देव, यह कैसा ढग है ?

८१ पर-भाषा पर-भाव—पराधीन मनुष्य की यही पूरी पहचान है कि उसकी भाषा विदेशी, भाव विदेशी, आभूषण विदेशी और पहरावा विदेशी होता है।

८२ दंभ,दिखावत—दंभ=पाखड। मतिअध=मूर्ख।

यह मूर्ख पराधीन मनुष्य धर्म का पाखड दिखाता है। पर पराधीन और धर्म का भला क्या सम्बन्ध ? अर्थात् कहीं पराधीन मनुष्य भी धर्म पालन कर सकता है ?

८३ डूबै डूब घरीक—घडी भर मे भारत के पुण्यों का समूह डूब जायगा। पराक्रम और बलवीर्य का सुदृढ जहाज़ आज भारत मे नहीं रहा।

८४ जरि अपमान—अपमान के अगारों से जल कर अब भी तू राख की तरह जीता है। हे पृथ्वी पर खाली भाररूप, नीच, बेशर्म क्यों न तू गर्भ से गिरकर नष्ट हो गया।

८५ दई छोडि—तुमने अपनी सभ्यता, अपना समाज, और अपना राज छोड दिया, साथ ही अपनी भाषा छोडकर तुम आज पराये हो गये हो।

८६ मरन भलो—अपने धर्म में मर जाना अच्छा है, परन्तु दूसरों का धर्म भयदायक है, पर गुलाम आदमी अपने और पराये का यह भेद क्या समझे।

८७ तुच्छ स्वर्ग—जो एक स्वतन्त्रता के लिए स्वर्ग को भी तुच्छ गिनता है, बस उसी के हाथ में आज भारत की लाज है।

८८. भीख सरिस—पाँसुरिनु = पसलियों से। मसक=मच्छर। पयोधि=समुद्र।

भीख की तरह स्वाधीनता कन कन माँग कर प्राप्त करना चाहते हो, क्या कभी मच्छर की पसलियों से भी किसी ने समुद्र को पाटा है अर्थात् स्वाधीनता भीख के समान माँगनेसे नहीं मिलती।

८९ अणु अणु पै—हे बलशाली महाराणा प्रताप, तेरे प्रचंड प्रताप से मेवाड के अणु अणु पर तेरी छाप लगी हुई है।

९० जगत जाहि—जिस स्वतन्त्रता को जगत ढूँढता फिरता है। हे निष्ठुर राणा प्रताप, वही स्वतन्त्रता स्वय व्याकुल होकर अब भी तुझे ढूढती फिरती है।

९१ ओ प्रताप—हे मेवाड-पति प्रताप! तेरा यह कैसा काम है कि दुष्टों को खाती तो तेरी तलवार है पर नाम काल का होता है।

९२ गरब करत—उमँगि = ऊँचा होकर। गिरि-शृंग = पहाड की चोटी। नभ = आकाश। उतग = ऊँचा।

हे गिरि-शृंग, तू इतना ऊँचा होने का गर्व क्या करता है? शिवाजी का यश-गौरव आकाश से भी ऊँचा है। तू उसके मुकाबले में क्या है?

९३ पराधीनता सिंधु—पराधीनता समुद्र में अब हिन्दु और हिन्द डूब रहे हैं, हे पतधर (लाज रखने वाले) गुरुगोबिन्द अब तुम्हारे हाथ में ही पतवार है।

९४ माथ रहौ—गुरु गोबिन्दसिंह के लाल (पुत्र) धन्य हैं जो यह कहते-कहते दीवार में चुन दिये गये कि हमारा सिर रहे या न रहे पर हम सत्य अकाल पुरुष को मानना नहीं छोड़ेंगे।

९५ अरे अहेरी यह—अहेरी = शिकारी।

अरे डरपोक शिकारी, यह तू क्या शिकार करता है—इन छोटी छोटी चीजों को क्या मारता फिरता है ? क्यों नहीं तू लपक कर और ललकार कर शेर को पकड़कर पछाड़ देता है।

९६. बस काढौ—बस, म्यान से यह तीक्ष्ण तलवार न निकालो। जानते नहीं कि यहाँ सुकुमार (कोमल) रङ्गीले, छैल-छबीले खड़े हैं।

९७ कवच कहा—ये लचकीले मृदु शरीर (वाले मनुष्य) कवच क्या पहनेंगे, फूलों के हार के भार से ही जो तीन तीन बल खाते हैं।

९८. कहा भयो इक—यदि तुम्हारे रणधीर (शूरवीर) शत्रु ने तुम्हारा एक किला गिरा लिया तो क्या हुआ ? हे रतवीर ! तुम तो मानिनियों (स्त्रियों) के मान रूपी दुर्ग को नित्य ही गिराते हो।

९९ सुमन सेज—बाल=बाला, युवती स्त्री । पौढ़े=सोते हो। तुम तो शृंगार करके बाला के संग फूलों की सेज पर सोते हो। भीष्म की शरशय्या की लाज रखने वाला अब कौन है ?

१०० वहँ कहु—काम-अधीर=कामातुर। तिय-मृग-ईछन= स्त्रियों की मृगों के समान आँखें।

ये कायर और कामातुर मनुष्य किस काम आयेंगे, स्त्रियों की मृगों के समान आँखें ही जिनके लिए तीक्ष्ण तीर हैं।

१०१ बरसत विषम—चारों ओर भयंकर अंगारे बरस रहे हैं, और सुन्दर बाग राख हो गया है, तब भी ये कविरूपी कोकिलें नवदम्पति (नये जोड़े) के रति रंग के गाने की धूम मचा रही हैं।

१०२ सुख संपति—सब सुख-सम्पत्ति लुट गई है, देश की छाती पर घाव हो गया है, पर अब भी कविराज (रति-क्रीड़ा के समय

बजती हुई) सोने की किंकनियों की भनकार सुन रहा है। अर्थात् देश की ऐसी बुरी अवस्था है, तब भी कवियों को देश की चिन्ता नहीं वरन् वे शृंगार के वर्णन में लगे हैं।

१०३ तिय कटि—बखानु=वर्णन। नव=नया। तिय-कटि-कृसता=स्त्रियों की कमर की सूक्ष्मता।

कवि लोग स्त्रियों की कमरकी सूक्ष्मता का नित्य नया वर्णन करते हैं। वह (स्त्रियों की कमर) तो क्षीण (दुबली) नहीं हुई पर इन कवियों की बुद्धि अवश्य क्षीण (नष्ट) हो गई है।

१०४ मरत पूत—उधर पुत्र दूध के बिना मर रहा है, और व्याकुल किसान रो रहा है। पर हे दुष्ट, इधर तू बैठा हुआ सुंदरी स्त्री के साथ शराब पी रहा है।

१०५ वृष रवि—वृष=वृषराशि जो ज्येष्ठ मास में होती है। उसीर=खस। आतप=धूप।

ज्येष्ठ मास के सूर्य की धूप से व्याकुल होकर उधर किसान बिना पानी के कलप कर मर रहा है, और इधर तुम खस की टट्टियों में बैठे अरगजा (केसर, चन्दन आदि सुगन्धित और शीतल पदार्थ) का लेप कर रहे हो।

१०६ उत हाकिम—मनोज=कामदव। रैयत=प्रजा।

उधर हाकिम प्रजा की छाती फाडकर खून पी रहे हैं और इधर हे काम से अधीर राजा, तू शराब पी रहा है।

१०७ लखि जिनके—जिनकी मज़बूत भुजाओं को देखकर यमदूत भी काँपते थे, अब भारतभूमि पर वे बाँके राजपूत कहाँ हैं, अर्थात् नहीं हैं।

१०८. रे निर्लज्ज—हे निर्लज्ज, जिन मूँछों के रहते हुए तूने शत्रु के सामने सिर झुका दिया, अब तू उन मूँछों पर फिर फिर फेर रहा है ?

१०९ कहँ प्रताप—वह प्रलय, वह घमण्ड, वह सजधज (ठाट-बाट) और वह ऐंठ तथा मर्यादा अब कहाँ है, अब तो सब कोरी शान है।

११० अब कोयल—हे कोयल, अब वह वसन्त ऋतु कहाँ, और डाली पर तेरा 'कू' 'कू' करना कहाँ, और वह आम की सरस बौर कहाँ, और वह जगल मे पक्षियो का विहार कहाँ ? वे सन तो जब अच्छे दिन थे, तभी थे, अब कहाँ।

१११ है है पुनि—तुम फिर स्वाधीन बनोगे और सदा गुलाम न रहोगे। तब (स्वतत्र होकर) इस युग के बलिदान का इतिहास लिखना।

११२ आजु कालि—आज कल, आज कल कय से कर रहे हो, पर कभी तैयार नहीं हुए। उधर तो घलाघली (मारपीट) हो रही है, और इधर तुम अभी हथियार ही साफ़ कर रहे हो।

११३ भूलेहुँ कबहुँ न—भूलकर भी कभी देश से विमुख (देश द्रोही) आदमी के पास नहीं जाना चाहिये। देशद्रोही के साथ रहने से तो नरक में रहना अच्छा है।

११४ तन काले—हमारा शरीर काला है, हमारे दिन भी काले (बुरे) हैं और हमारा कुल, घर तथा खान्दान सब काला है। पर काले कुरूपों का हृदय काला नहीं होता। मूल पुस्तक में 'कुरूप वारेनु को' की जगह 'कुरूप कारेनु को' चाहिए।

११५ चित्र आर्य—आर्य साम्राज्य का चित्र कोई भी न उतार सका था, यहाँ तक कि चीन और ग्रीस के चतुर चित्रकार भी हार गये थे।

११६ पुँहैं याही—संसार में इधर-उधर फिरने से क्या होता है, हम तो फिर इसी जगह इसी देश में) आ जायँगे, जैसे कि जहाज का पंछी फिर जहाज पर उड़कर आ जाता है।

११७ अथयों सो—वह भीष्म भानु (हमारा प्रताप) जो अस्त हुआ, सो अस्त हो गया, वह फिर उदय न हुआ । आर्यशक्ति की जय-रूपी कमलिनी तब से (इस सूर्य के अस्त हो जाने से) ही मैली पड़ गई, मुरझा गई । मूल पुस्तक में 'भीपममान' की जगह "भीपमभान" चाहिए ।

११८ कठिन रामको काम—मूल पुस्तक में 'कठिन राम को नाम' छपा है, उसके स्थान पर 'कठिन राम को काम' चाहिए । राम के समान काम करना कठिन है, पर राम का नाम जपना (राम राम करते रहना) आसान है । जो राम के काम करते हैं, उनका ही राम-रूपी परमात्मा से काम पड़ता है ।

११६. चूस गरीबनु—ये गरीबों का खून चूस कर इन्द्र के समान भोग (ऐश) करते हैं, फिर भी लोग उन्हें 'गरीब परवर' (गरीबों का रक्षक) कहते हैं ।

१२० नभ जिमि बिन—जिस तरह आकाश चन्द्रमा और सूर्य के बिना (कांतिहीन) होता है, जैसे बिना पखों का पक्षी (असहाय) होता है, जिस तरह बिना प्राणों के शरीर (व्यर्थ) होता है, वैसे ही बिना तेज के आँखें हैं ।

१२१ इन नैननि—इन आँखों में दुखित दुर्बल और गरीबों को क्यों नहीं रखते और शरीर का बलिदान देकर दलित देश को स्वतन्त्र क्यों नहीं करते ?

१२२ कलपावत—कब से निष्ठुरता का रूप धारण करके हमें कलपा रहे हो । करुणानिधान तुम भी आजकल के राजाओं के समान हो गए हो ।

रामनरेश त्रिपाठी

तेरी छवि

है मेरे—हे नाथ ! तेरी शोभा तीनों लोको में छा रही है। कवि की वाणी में और मन मे तेरी ही शोभा का चमत्कार है।

माता के नि स्वार्थ प्रेम में, प्रेमिका के मोह में, वालक क कोमल अधरों (होंठ) पर और उसकी मन्द मन्द मुस्कान की छाया में तेरी शोभा झलक रही है।

पतिव्रता—पतिव्रता नारी के पातिव्रत्य मे, वृद्धो को लालची दिल में, होनहार नवयुवकों क ब्रह्मचर्य से जगमगाते यौवन मे, तिनके के छुटपन में, पर्वत की अभिमान-भरी विशालता में, और रात्रि की घोर शान्ति मे हे नाथ ! तेरी ही शोभा दिखाई देती है।

ऊषा की—उषा काल की चञ्चल वायु में, खेतो और खलि-यानों में सुख-दु ख के गीत गाते हुए सीधे-सादे किसानों में तथा मेहनती किन्तु गरीब मजदूर की बहुत छोटी-सी इच्छा में और पति की प्रतीक्षा करती हुई गरीबनी की आशामें हे नाथ ! तुम्हारी ही झलक दिखाई देती है।

भूख प्यास—भूख और प्यास से व्याकुल अनाथ की मर्मभेदी पुकार में, दुखियों के निराशा से निकले हुए आँसुओं में, प्रेमियों

के मार्गों में, मतवाले मोर के रसीले नाच में कोयल की पञ्चम तान में, वनपुष्पो के स्वच्छन्द अभिमान में, और कलियों की अनन्त सुन्दरता मे तुम्हारी ही छटा छिटकी हुई है।

निर्जनता—सन्तत = निरन्तर।

जनशून्य स्थान की व्याकुलता में, सन्ध्याकाल के भजन-कीर्त्तन में, निरन्तर परोपकार की सद्भावनाओं में, हे नाथ! तेरी ही शोभा का विकास है। जब तू स्वर्ग के भवन में चन्द्ररूपी खिडकी खोल कर झाँक झाँक कर मुस्कराता है, उस समय इस धरातल में एक नवीन जीवन की छटा दिखलाई देती है।

कविता का साराश यह है—कि सृष्टि में जो कोई वस्तु भी चरम सीमा तक पहुँच चुकी है, वह उसी गुप्त शक्ति (भगवान्) से ही मिली है—जो कुछ भी अलौकिक है, दिव्य है, विशिष्ट है, कल्पनातीत है, मधुर मनोहर है वह सब उसी ईश्वर की शोभा से ओत-प्रोत है।

जी में—चित्त चाहता है कि सूर्य या चन्द्र की किरणों में विलीन हो कर एक क्षण में ही पृथ्वी के इस विशाल शोभा के सागर में कूद ही तो पड़ूँ—ताकि सदा के लिए तुम्हारी शोभा निहारता रह सकूँ।

अन्वेषण (खोज)

इस कविता मे कवि दिखाना चाहता है कि हम दीनबन्धु भगवान को गा-बजाकर या धन का मद दिखा कर रिझाना चाहते हैं, उनके दर्शन मन्दिरों में, कुञ्जों में, वनों मे तथा स्वर्ग में

पाना चाहते हैं, परन्तु परमात्मा के दर्शन इन स्थानों पर नहीं होते अपितु दीनबन्धु भगवान के दर्शन दीनों के घरों में, दुखियों की आहों में, और पतितों की परिताप पीर में होते हैं, जिसकी हम कभी आशा भी नहीं करते।

हे नाथ ! मैं जब तुझे (रम्य समझकर) किन्हीं सुन्दर-सुन्दर कुंजों में ढूंढ रहा था—तब तू किसी गरीब के घर मेरी खोज कर रहा था।

तू किसी दुर्बल की आह बन कर मुझे पुकार रहा था पर मैं शंख, घंटे, घड़ियाल, सितार, संगीतादि से तुझे रिझाकर बुला रहा था।

तू दीन-दुर्बलों के द्वार पर खड़ा खड़ा मेरी इन्तजार कर रहा था पर मैं किसी रमणीक उद्यान में तेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

तू किसी (गरीब) के आँसू बन कर मेरे लिये बहा—अर्थात् किसी गरीब के आँसुओं में बह कर तूने मेरा मन अपनी ओर आकर्षित करना चाहा पर उस समय मेरी आँखें अपने यार के मुँह पर लगी हुई थीं।

हे नाथ ! मैं (मन्दिरों में) बाजे बजा बजा कर जब तुझे रिझा रहा था—तेरी झूठी प्रशंसा कर रहा था, उस समय तू किन्हीं पतितों (दलितों) के संगठन में (उद्धार में) लगा हुआ था।

जगत् की प्रत्येक वस्तु को नाशवान जान कर मेरा मोह जगत से टूट गया था—उस समय तू किसी आदमी के पतन में उत्थान भर रहा था, अर्थात् किसी पतित आदमी का उद्धार कर रहा था।

तू तो बेबस (असहाय) हुए पतितों के बीच में मौजूद था, पर (मैं तुझे दिव्य समझ कर तेरा स्थान भी स्वर्ग में ही समझ रहा था इसलिये तुझे ढूँढने को) मैं सदा आकाश की ओर स्वर्ग में निहारता रहा, फिर भला तुम्हारे चरणों में कैसे झुकता ?

इस तरह तूने अनेकों अवसर मुझे मिलने को दिये—रोग (शोक) कष्ट भेज भेज कर कई वार चेताया, परन्तु मैं तुझे न मिल सका क्योंकि मुझे तो वातें बनाना, गाल बजाना ही आता था और तू कर्म करने में लगा था अर्थात् तू बातों की अपेक्षा कर्म को अधिक पसंद करता था।

हरिश्चन्द्र और ध्रुव* ने कुछ और ही बताया था—अर्थात् उन्होंने अपने उदाहरण द्वारा सर्वस्व त्याग के अनन्तर तुझे पाकर यह बताया था कि परमात्मा धन-सम्पत्ति में नहीं है अपितु त्याग में है। पर मै तो तेरी शक्ति धन में समझ रहा था अर्थात् मैं धन को ही तेरा रूप समझ रहा था।

हे ईश्वर! मैंने तुझे रावण की बढ़ती हुई कामनाओं में ढूँढना चाहा, (क्योंकि मैंने देखा कि रावण अपनी भुजाओं के बल से एक चक्रवर्ती और विपुल सम्पत्तिशाली राजा बना हुआ है) परन्तु (ज्ञान-चक्षु से देखने पर विदित हुआ कि) तू परोपकारी तपस्वी दधीचि† के अस्थिपंजर में विराजमान था, रावण की लालसा में नहीं। अर्थात् परोपकारी आत्माओं में ही उसका निवास है।

---

* राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं-सुनीति और सुरुचि। सुनीति के लड़के का नाम ध्रुव था और सुरुचि के लड़के का नाम उत्तम था। राजा का प्यार सुरुचि से अधिक था। एक दिन उत्तम राजा की गोद में खेल रहा था, इतने में ध्रुव वहाँ आया और अपने पिता की गोद में बैठना चाहा, इस पर सुरुचि ने कहा कि तू मेरे पेट से नहीं पैदा हुआ, इसलिये तू राजा की गोद में नहीं बैठ सकता, यह आसन तो मेरे लड़के के लिये ही है। सुरुचि के वाक् प्रहार से दुखी हो कर ध्रुव राज्य छोड़ कर चला गया और ध्रुव पद की प्राप्ति में जा लगा।

† ना।—पृष्ठ संख्या २२३ पर देखिये

उस दिग्विजयी सिकन्दर के विक्रम में, हे नाथ ! मैं तुम्हारी सत्ता समझ रहा था, परन्तु तुम तो पहाड़ खोदने वाले (शीरीं के सच्चे प्रेमी) फरहाद* के उन्मत्त हृदय में विराजमान थे।

(फाँसी के तख्ते पर लटकते हुए) ईसा की आह में तू ही खेल रहा था, अर्थात् तू ही ईसा को आत्म-बलिदान का बल दे रहा था, और जब मृत्युशय्या पर पड़ा-पड़ा महमूद अपनी जन्म भर की बटोरी हुई माया को देख-देख कर रो रहा था और सोच रहा था कि इसमें से मेरे साथ कुछ भी नहीं जा रहा तब तू ही उसके रोने पर हँस रहा था।

---

* भिखारी फरहाद का शीरीं नामक एक कुलीन कन्या से प्रेम हो गया था—एक बार भिक्षा लेने के समय वह उसपर मुग्ध हो गया। परन्तु कहाँ वह याचक और कहाँ वह राजकुमारी ! यह असम्भव था कि उनका विवाह हो जाय। किसी ने फरहाद से कहा कि इस उजड़े प्यासे गर्मी से तपे हुए नगर में यदि तुम पहाड़ से एक धारा जल की बहा दो तो तुम्हें शीरीं मिल जावेगी। प्रेमी फरहाद कुदाल लेकर पर्वत पर जा पहुँचा। एक एक प्रहार में शीरीं का प्रेम भर-भर कर उसने जल धारा उस नगर में बहा दी। "जहाँ चाह वहाँ राह"। यह दुष्कर कार्य भी भगवान् की कृपा से सहज हो गया। जल धारा जब पहुँच गई तो किसी ने उपहास में कह दिया—ओ फरहाद ! शीरीं तो मर गई, तुम देर से पहुँचे। यह सुनना था कि वह प्रेमी उसी द्वार पर प्राण विसर्जन कर स्वर्गलोक को सिधार गया। शीरीं ने जब अपने लिए ऐसा आत्मत्याग सुना तो वह भी वहीं फरहाद के साथ परलोक जा पहुँची। तभी से फरहाद का उपनाम "कोहकन' अर्थात् पर्वत को खोदने वाला हो गया।

भक्त प्रह्लाद तेरा ठीक स्थान जानता था और तू ही मंसूर की "मैं खुदा हूँ" "मैं खुदा हूँ" की रट में मचल रहा था।*

अन्त में तू सत्य तथा अहिंसा के अवतार महात्मा गांधी के अस्थिपंजर में—हड्डियों के समूह में—चमक पड़ा। पर मैं तो तुझे बली सुहराब के पीलतन (हाथी के समान हृष्ट पुष्ट शरीर) में समझ रहा था।

जब हम दोनों में इतना अधिक भेद है अर्थात् जहाँ मैं तुझे समझता हूँ वहाँ तू दिखाई नहीं देता अपितु बिलकुल उससे विपरीत स्थान पर तू दिखाई देता है तब मैं तुझसे कैसे मिल सकता हूँ? हे भगवन्! अन्त में थक कर तेरी शरण में आया हूँ।

सूर्य की किरणों में जो रूप है, वह तू ही है। वायु में जो प्राण देने की शक्ति है वह और आकाश में जो विस्तार है, वह तू ही है।

हिन्दू लोग जिसे पाने के लिए ज्ञान-मार्ग का आसरा लेते हैं, मुसलमान जिस पर ईमान लाते हैं, ईसाई जिसे प्रेम रूप समझते हैं, सज्जन जिसे सत्य स्वरूप मानते हैं वह और कोई नहीं तू ही है।

हे दीनों के नाथ! मुझे ऐसी बुद्धि दो कि मैं तुम्हें ही आँखों से, मन से तथा वाणी से देखूँ, विचारूँ और बोलूँ।

कष्ट सहन करने वालों का ही नाम अमर हो जाता है। संसार उन्हें स्मरण करता रहता है। हे प्रभु! मुझे तुम कष्ट सहने की शक्ति प्रदान करो, जिससे मैं दुख में घबड़ाऊँ नहीं और सुख में तुम्हें बिसार न बैठूँ, इस प्रकार का विचित्र तथा प्रबल भाव मेरे व्याकुल मन में भर दो।

---

*मंसूर की कहानी पृष्ठसंख्या २२२ पर देखिये।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

नयन

नलिन = कमल। मीन = मछली। प्रतीक्षा = बाट जोहना। शर्वरी = रात। लोल = चंचल। काल-ताल तरग = कालरूपी तालाब की तरग। वेणु = बांसुरी। निरत = लगे हुए। वादन = बजाना। विभु-गान = ईश्वर का गुण गान। मर्म = रहस्य भेद।

ये कमल के समान मदभरी मलिन आँखें हैं, या थोडे पानी में बेचैन मछलियाँ हैं, (तात्पर्य यह है कि आँखें इतनी बेचैन जान पड़ती हैं, जितनी थोडे पानी की मछलियाँ होती हैं) या किसी की राह देखते-देखते सारी रात बीत जाने के कारण ये दीन हैं, या रास्तागीर से ये बेचैन आँखें कह रहीं हैं—हम तपस्वी हैं, सारे दुखों को सह रही हैं, समय रूपी तालाब की तरगों में बही हुई हम गरमी, बरसात और जाडे के दिन गिन रही हैं। (जिस प्रकार तपस्वी सभी दुख सहते हुए गरमी, बरसात, जाडे के कष्ट बर्दाश्त कर लेते हैं, उसी प्रकार हम भी कर रही हैं)। हम बोलती नहीं हैं, किन्तु पतन और उत्थान में (गिरने और उठने में पाप-पथ पर जाने या धर्म पथ पर चलाने में) बाँसुरी तथा सुदर बाजों के साथ परमेश्वर का कीर्तन करने में जो मर्म (आनन्द) छिपा है, उसे हम जानती हैं, फिर भी हम उसी के (अपने प्रियतम के) ध्यान में लगी रहती हैं। आह, कितने बेचैन आदमियों के मन मिल चुके हैं, कितने हृदय खिल चुके हैं (अर्थात् उनकी इच्छाएँ पूरी हो चुकी

हैं), कितने हृदय हिल चुके हैं, प्रिय व्यथा की आग में वे लोग तप चुके हैं (अर्थात् प्यारे के वियोग की ज्वाला वे सहन कर चुके हैं) और उन प्रेमियों के दुख अब समाप्त हो गए हैं, किन्तु हमारे लिए ही वे मौन हैं। हे गस्तागीर, वे कोमल कुसुम हैं, या कौन हैं ? अर्थात् तमाम लोगो के दुख दूर हो रहे हैं, सब अपने प्यारों से मिल रहे हैं केवल हमारे ही वे—प्रियतम क्यों मौन है ? वे फूल जैसे कोमल हैं, या निर्दय ?

यमुना के प्रति

अतीत = भूत काल। अलक = बाल। निर्निमेष = एकटक। विस्मृति = भूल जाना। पुलकों = रोमाचों।

हे यमुने किस भूत-काल के दुर्जय जीवन को और किस के अपार रूप को सोने के फूल के समान तूने अपने बालों में गूँथ रखा है ? (भूत-काल को गूँथ रखने से कवि का तात्पर्य यह है कि तेरे बाते जमाने का क्या इतिहास है ?) तेरी एकटक आँखों में किस विस्मृति की शराब का नशा छाया हुआ है, (अर्थात् तुझे देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो, उसमें बहुत-सी बीती हुई बातें डूबी हुई हैं)। तुम्हारी आँखों में तुम्हारे रोमाच में (लहरों में) अभी तक बेहद सुहाग छलक रहा है, (तुम अभी तक प्रसन्न जान पड़ती हो)। तुम्हारे मुक्तहृदय के सिंहासन पर भूत-काल का कौन सा सम्राट बैठा हुआ है जिसके मस्तक पर सूर्य्य, चन्द्र, तारे और सारा विराट ससार चमक रहा है। (अर्थात् तुम्हारा इतिहास

स्मृति

१ जटिल जीवन—गतिमयि—चचल।

जिंदगी की शराब में तैर-तैर कर तुम चुप-चाप डूब जाती हो। अरी, हमेशा चचल रहने वाली, तुम बार-बार उमड़ कर प्रेम की बातें करती हो। मेरे बीते हुए जमाने के जो गीत सो चुके हैं, (अर्थात् जिन्हें मैं भूल चुका हूँ) उन्हें सुना कर (फिर याद दिलाकर) मेरा ध्यान हर लेती हो? (यहाँ प्रथम चार चरणों में मछली का रूपक बाँधा है, किन्तु मछली की क्रियाओं का ही वर्णन किया है। उपमान का नाम नहीं बतलाया। छायावादी कवि लुप्तोपमा का प्रयोग अधिक करते हैं, जिस तरह मछली पानी में तैरती है और डूब जाती है, बार बार ऐसा ही करती है उसी प्रकार स्मृति भी जिन्दगी की शराब में बार-बार तैरती और डूबती है—किसी की याद हमें आती है—और विलीन हो जाती है।)

२ सफल जीवन—

मेरे सफल और असफल जीवन के, कहीं की जीत और कहीं की हार भरे हुए सब गानों को, तुम्हारी निर्भय झकार जगा देती है। तब हवा से व्याकुल होने वाले (हिलने वाले) कमल की तरह मैं बेचैन और असहाय रह जाता हूँ। सपूर्ण छद का आशय यह है कि स्मृति बीती हुई जिन्दगी की सारी बात—जिनमें कई जगह हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ है, कई जगह हमें हार खानी पड़ी है—हमारे मस्तिष्क में जाग्रत कर देती है, उस समय हमारी ऐसी स्थिति हो जाती है, जैसे हवा से हिलने वाले कमल की। एक झोंका इधर से आया तो उधर हो गया, उधर से आया तो इधर गया। एक बात याद आते ही चित्त का भाव क्षुब्ध हुआ, दु

याद आते ही और किसी प्रकार का हुआ । इसी प्रकार परेशानी होती है ।

३ मुक्त शैशव

(कहाँ गया) आजादी से भरा हुआ बचपन, जब मृदु-मधुर सुगन्धित वायु से हिलने वाले पत्तों की तरह छोटे-छोटे अग स्नेह से काँपते थे, बिना खिले फूल की भाँति नया-नया (रस) सचय करते थे (नई नई बातें सीखते थे), वह सुनहले प्रभात के समान जीवन आज बीत चुका है । वह ताल, वह गति, वह लय, और छद (अर्थात बचपन की सारी बातें) सोये हुए भूत काल में बद हो गई हैं ।

(यहाँ पर कवि बचपन की तुलना प्रभात-काल से करता है । जिस तरह प्रभात में मधुर मलय समीरण से पत्ते हिलते हैं, उसी तरह बचपन में लाड प्यार से छोटे-छोटे अग पुलकित होते है, बिना खिले कुसुमों में जिस प्रकार नये-नये रस—मधु-पराग का सचय होता है, उसी प्रकार शिशु का हृदय भीतर ही भीतर अनजान रूप से ज्ञान-सचय करता और विकसित होता रहता है । जिस प्रकार रात को सब सो जाते हैं, ये सुदर बातें समाप्त हो जाती हैं उसी प्रकार इसका बचपन चला गया है ।)

४ आँसुओं—निर्भर = झरना ।

(कवि अपनी जवानी को याद करता हुआ कहता है) ये प्राण सिमटकर आँसुओं के रूप में स्वच्छ निर्झर के जल-कणों की भाँति बह कर, जिसे जी भर कर जीवन-दान देते थे (अपने आप को सौंप देते थे) वह चुम्बन की पहली हिलोर (लहर) आज तो सपने की याद-सी दूर भी बीते हुए समय-सी हो गई है, आज उसका किनारा भी नहीं मिलता । (अर्थात जवानी की वह उमंग

जिसमें किसी को प्यार करते थे, किसी के आगे आँसू बहाते थे, किसी को अपना जीवन सौंपना चाहते थे, आज सपना हो गई है।)

तृप्ति वह—अभिराम = सुन्दर। क्लान्त = थकी हुई। गरल = विष।

जो तृष्णा की अविकृत (न बदलने वाली) और स्वर्गीय आशाओं की सुन्दर, थकी हुई और सोई हुई मूर्ति थी, जो विष को अमृत बनाने वाली (कष्टों को भी मधुर बनाने वाली) और अमृत की प्राण थी वह बालू के समान कहाँ विलीन हो गई या शरीर के बंधनों से रहित बंशी की तान की तरह कहाँ खो गई है।

तुम और मैं

इस कविता में ईश्वर और जीव का सम्बन्ध अनेक उपमाओं द्वारा बताया गया है।

१ तुम तुंग हिमालय—तुंग = ऊँचा। शृंग = चोटी। सुर सरिता = गंगा। विमल = स्वच्छ। हृदय-उच्छ्वास = हृदय का उद्गार। कांत = सुन्दर। कामिनी = स्त्री। सुरापान = शराब पीना। भ्रांति = भ्रम। दिनकर = सूर्य। खर = तीक्ष्ण। जाल = समूह। सरसिज = कमल। मुसकान = फूलना, खिलना। रागानुग = इच्छा के पीछे पीछे चलने वाला, फलकामना से किया गया। शुचिता = पवित्रता। समृद्धि = ऐश्वर्य।

यदि तुम हिमालय के ऊँचे शिखर हो तो मैं चंचल गतिवाली गंगा हूँ। अगर तुम स्वच्छ हृदय के उद्गार हो तो मैं सुन्दरी कविता रूपिणी स्त्री हूँ। अगर तुम प्रेम हो तो मैं शान्ति हूँ तुम सुरापान के घने अंधकार हो तो मैं मतवाली मस्ती हूँ। तुम सूर्य की तेज

किरणों के समूह हो तो मैं कमल की मुसकान हूँ । तुम वर्षों के वियोग हो और मैं पिछली पहचान हूँ। तुम योग हो और मैं सिद्धि हूँ । तुम फलकामना से किये गये निश्छल तप हो और मैं उस द्वारा प्राप्त पवित्रता तथा सरल ऐश्वर्य हूँ ।

जैसे हिमालय ऊँचा है, वैसे ही ईश्वर महान् है तथा जीव नदी की भाँति नीचे की ओर जाने वाला है । ईश्वर स्थिर है, जीव चंचल है। जैसे हिमालय से गंगा निकली है वैसे ही ईश्वर से जीव निकला है। दूसरी उपमा में भी ईश्वर मूल बताया गया है क्योंकि विमल हृदय-उच्छ्वास से ही कविता प्रकट होती है, इसी प्रकार ईश्वर जीव का कारण है। प्रेम सचेष्ट होता है, ईश्वर भी ऐसा ही है । शांति निश्चेष्ट होती है, जीव भी ऐसा ही है। मस्ती का कारण सुरापान होता है, ईश्वर भी जीव का कारण है। सूर्य की किरणों से कमल खिलता है, ऐसे ही ईश्वर की ज्योति से जीव प्रफुल्लित होता है । 'वर्षों के वियोग' इस लिये कहा है कि ईश्वर 'पुरुष पुरातन है, उसकी कोई सीमा नहीं । 'पिछली पहचान' में समय की सीमा लक्षित है, वैसे ही जीव का जीवन भी सीमित है । सिद्धि योग के ऊपर आश्रित है, ऐसे ही परमात्मा पर आश्रित जीव है । तप कारण, तथा समृद्धि कार्य है । ऐसे ही ईश्वर कारण तथा जीव कार्य है ।

२ तुम मृदु मानस के भाव—मानस = मन । मनोरञ्जिनी = मन को लुभाने वाली । नंदन-वन = इन्द्र का उपवन । विटप = वृक्ष । तल = नीचे की । प्रेममयी = प्रेमिका । कंठहार = गले की माला । वेणि काल-नागिनी = काली नागिन की भाँति चोटी । कर पल्लव-झंकृत = कोमल पत्तों के समान हाथों द्वारा बजाई गई । रेणु = धूलि । अधर = ओंठ । वेणु = बाँसुरी ।

तुम मन के कोमल भाव हो और मैं (उसको प्रकट करने

वाली) मनोरञ्जक भाषा हूँ । तुम नन्दन वन के घने पेड़ हो और मैं उसके नीचे की शीतल छाया और शाखा हूँ । तुम प्राण हो और मैं शरीर हूँ । तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हो और मैं मन को मोहने वाली माया हूँ ।

तुम प्रेममयी युवती के सुन्दर कंठ के हार हो और मैं काली साँपिनी के समान उसकी चोटी हूँ । तुम कोमल पत्तों के समान हाथों द्वारा बजाई गई सितार हो और मैं व्याकुल जुदाई की रागिणी हूँ । तुम रास्ता हो और मैं धूल हूँ । तुम राधा के मनमोहन कृष्ण हो और मैं उसके अधरों की बाँसुरी हूँ ।

भाव ही भाषा का रूप धारण करता है, इसी प्रकार जीव भी ईश्वर का ही स्वरूप है । भाव दिखाई नहीं देते, भाषा लिपिबद्ध होने पर दिखाई देती है । इसी प्रकार ईश्वर निराकार है पर जीव देह धारण करने पर साकार हो जाता है । वृक्ष अंगी और शाखा अंग है, ईश्वर और जीव में भी यही संबंध है । प्राणहीन शरीर व्यर्थ है, ईश्वर हीन जीव भी व्यर्थ है । ब्रह्म के संकेत पर माया नाचती है, जीव भी इसी प्रकार ईश्वर के संकेत पर नाचता है । ब्रह्म निर्लिप्त है और माया संलिप्त, इसी तरह ईश्वर और जीव को समझना चाहिए । कंठहार आगे होता है, वेणी पीछे । ऐसे ही ईश्वर आगे चलने वाला है, जीव उसके पीछे । सितार रागिनी का कारण है, ईश्वर जीव का कारण है । पथ में कितने ही धूलि कण हैं, ईश्वर में अनेक जीव सत्ता धारी व्यक्ति हैं । बाँसुरी में मनमोहकता फूँकने वाले श्रीकृष्ण हैं, ऐसे ही जीव में सौंदर्य भरने वाला ईश्वर है ।

३ तुम पथिक दूर के—पथिक=यात्री । श्रान्त=थके हुए । बाट जोहती=मार्ग देखने वाली । भव सागर=संसार-रूपी समुद्र । नीलिमा=नीला रंग । शरद सुधाकर-कला-हास=शरद ऋतु के

चन्द्रमा की (पूर्ण) कला की हँसी अर्थात् चाँदनी । निशीथ= आधी रात। मधुरिमा=मिठास, माधुर्य । गध कुसुम=फूल की महक। पराग=फूल की धूलि । मृदुगति=मंद चाल वाली। मलय समीर=मलयाचल की सुगन्धित हवा। शक्ति=देवी। अचला=दृढ।

तुम दूर पथ के थके हुए पथिक हो, और मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करने वाली आशा हूँ। तुम दुर्गम ससार-रूपी सागर हो और मैं उसके पार जाने की इच्छा हूँ। तुम आकाश हो और मैं उसकी नीलिमा हूँ। तुम शरदकाल के चन्द्रमा की कला की हँसी हो तो मैं आधीरात की मधुरिमा हूँ।

तुम सुगधित फूल का कोमल पराग हो और मैं मलय पर्वत की मंद सुगन्ध वायु हूँ। तुम स्वेच्छाचार से युक्त पुरुष हो और मैं प्रेम द्वारा बाँधने वाली प्रकृतिरूपी जजीर हूँ। तुम शिव हो तो मैं शक्ति हूँ। तुम रघुकुल के गौरवस्वरूप रामचन्द्र हो तो मैं अचल भक्तिरूपी सीता हूँ।

ईश्वर आगतुक है, जीव उसकी प्रतीक्षा करने वाला। ईश्वर समुद्र है, अगाध है, जीव उसकी खोज करने वाला, उसकी थाह ढूँढने वाला है। आकाश की भाँति ईश्वर अनत है, अरूप है, जीव नीलिमा की भाँति सरूप है। रात्रि चाँदनी से देदीप्यमान होती है, जीव ईश्वर की प्रतिभासिक (जो वास्तव में नहीं पर भ्रम के कारण भासित हो, जैसे रस्सी में साँप का ज्ञान प्रतिभासित होता है) सत्ता से सचेतन है।

वायु पुष्पों की सुगधि से
की ज्योति है। ई२५९

है ईश्वर स्वतन्त्र हैं और जीव परतन्त्र। जीव और ईश्वर में सीता और रामचन्द्र की तरह आराध्य और उपासक का सम्बन्ध है।

४ तुम हो प्रियतम—मधुमास = चैत्र मास। पिक = कोकिल। कल-कूजन = सुन्दर वाणी। मदन = कामदेव। पच शर हस्त = हाथ में पाँच बाण लिए हुए। मुग्धा = एक प्रकार की भोली नायिका। अम्बर = आकाश, वस्त्र। दिग्वसना = दिशाएँ ही जिसके लिए वस्त्र हैं, नग्न। घन-पटल श्याम = बादलों का काला परदा। तडित्तूलिका रचना = बिजली रूपी कूची द्वारा लिखी हुई चित्रकारी। रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य = रण क्षेत्र में जोश में आकर वीर लोगों द्वारा किया गया नाच। नाद = ध्वनि। सार = तत्त्व। कुंद = एक सफेद फूल। इन्दु = चन्द्रमा। अरविंद = कमल। व्याप्ति = चारों ओर या सब जगह फैली हुई वस्तु।

हे प्रियतम! तुम चैत्र मास हो—वसंत ऋतु हो तो मैं सुन्दर आवाज वाली कोयल हूँ। तुम पाँच बाण हाथ में लिये हुए कामदेव हो तो मैं एक अनजान मुग्धा हूँ। तुम आकाशरूपी वस्त्र हो और मैं दिग्वसना (नग्न) नारी हूँ। तुम बादलों के काले परदे पर चित्र बनाने वाले चित्रकार हो और मैं बिजलीरूपी कूची द्वारा लिखी हुई चित्रकारी हूँ। तुम रणक्षेत्र में जोश के कारण उत्पन्न वीर लोगों के पागलपन का भयकर नाच हो तो मैं युवती के नूपुर की मधुर ध्वनि हूँ। तुम यदि वेद के सार स्वरूप ओंकार की ध्वनि हो तो मैं शृंगार रस का सर्वोत्तम कवि हूँ। तुम यश हो तो मैं उसकी प्राप्ति हूँ। तुम उज्ज्वल कुन्द या चन्द्रमा हो तो मैं उन का फैलाव—उज्ज्वलता हूँ।

वसन्त ऋतु होने से ही कोयल आती है ऐसे ही ईश्वर के होने से ही जीव की सत्ता है। जैसे कामदेव मुग्धा नायिका के हृदय में

चुपचाप कामनामना उत्पन्न करता रहता है वैसे ही ईश्वर भी जीव को कर्म करने में प्रवृत्त करता है। जैसे वस्त्र नवयुवती की लज्जा का सुरक्षित रखते हैं वैसे ही ईश्वर भी जीव की हमेशा रक्षा करता है। जैसे बिजली का आधार बादल हैं, वैसे ही जीव का आधार ईश्वर है।

इस अंतिम पद में ईश्वर को पुरुषरूप में और जीव को नारी रूप में कल्पित किया है। इसी से ईश्वर के नृत्य को ताण्डव नृत्य कहा है और जीव के नृत्य को घुँघुरु की मधुर आवाज़ कहा है। जैसे नक्षत्र तथा चन्द्र आदि के होने से उज्ज्वलता तथा चाँदनी की सत्ता है, वैसे ही ईश्वर से ही जीव की सत्ता है।

सुमित्रानन्दन पंत

छाया

१ कौन—तरु=पेड़। अलि=सखि। विरक्ति=अप्रसन्नता, खिन्नता। विजन=जनरहित, एकान्त। दुखविधुरा=दुख से व्याकुल।

कहो तुम दमयन्ती-सी कौन पेड़ के नीचे सोई हो? हे सखि, क्या तुम्हें भी कोई नल सा निष्ठुर पुरुष छोड़ गया है*। नीले पत्तों की शय्या पर अप्रसन्नता और मूर्छा के समान, एवं जुदाई के कारण

---

* विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती का विवाह निषध देश के राजा नल से हुआ था। विवाह के बाद एक दिन राजा नल अपने छोटे भाई पुष्कर के साथ जुआ खेलते खेलते राजपाट सब हार बैठे। तब उन्होंने जंगल की शरण ली। नल ने दमयन्ती को बहुत कहा कि वह जंगल के दुःखों को सहन करने के बजाय अपने पिता विदर्भ नरेश के यहाँ चली जाय, परन्तु वह इस विपत्ति के समय पति को, किसी तरह छोड़ने को तैयार न हुई। जंगल में दोनों की

मलिन और दुःख से व्याकुल के समान एकान्त (जनरहित) जंगल में तुम कौन पड़ा हो ?

२ पछतावे की—पछतावे की परछांई (प्रतिबिम्ब) के समान पृथ्वी पर छाई हुई तुम कौन हो। दुर्बलता, अँगड़ाई अथवा अपराधी के समान डर से चुप तुम कौन हो ? बार बार ठंडी साँस भर कर निर्जनता के पर्दे पर (एकान्त स्थल पर) क्या तुम क्रूर काल के निर्दय कार्यों की कहानी लिख रही हो ?

३–४ निज जीवन के मलिन—नीरव = मौन। निर्भर = आश्रित। अतीत = बीता हुआ, गुजारा हुआ। दिनकर = सूर्य। श्रान्ति = थकावट। तम = अँधेरा। द्रुत = जल्दी। अँतर्धान = छिप जाना।

अपने जीवन के मलिन पृष्ठ पर मौन शब्दों में आश्रित किस बीते हुए का अत्यंत कोमल करुण चित्र तुम लगातार खींच रही हो ? अर्थात् अपने दुखी जीवन के किस दुख की करुण कहानी लगातार कह रही हो ? पवित्र सूर्यकुल में जन्म पाकर (छाया की उत्पत्ति सूर्य के कारण होती है अतएव उसे सूर्य वंश में उत्पन्न कहा गया है) और सदा पेड़ के साथ बढ़कर, मुरझाए हुए पत्तों की साड़ी से अपने कोमल शरीर को ढाक कर तुम दूसरों की सेवा में सदा लगी रहती हो, और रास्ते की अत्यधिक थकावट को दूर

बुरी अवस्था हो गई कि राजा नल के पास तन ढकने तक को कपड़ा न रहा। तब उन्होंने उस दशा से छुटकारा न देखकर दमयन्ती को अकेली छोड़ कर अपना राज्य पाने के लिए कुछ उपाय करना चाहा। यह सोचकर वे एक दिन निर्जन जंगल में सोई हुई दमयन्ती को अकेला छोड़ आप वहाँ से चल दिये और उन्होंने राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि का काम स्वीकार कर लिया। कुछ समय के बाद दमयन्ती की चतुरता से फिर दोनों का मिलना हुआ।

चुपचाप कामवासना उत्पन्न करता रहता है वैसे ही ईश्वर भी जीव को कर्म करने में प्रवृत्त करता है। जैसे नम्र नवयुवती की लज्जा का भूषित रखता है उसी प्रकार ईश्वर भी जीव की क्रमशः रक्षा करता है। जैसे बिजली का आधार बादल है, वैसे ही जीव का आधार ईश्वर है।

इस अन्तिम पद में ईश्वर को पुरुषरूप में और जीव को नारीरूप में कल्पित किया है। इसी से ईश्वर के नृत्य को ताण्डव नृत्य कहते हैं और जीव के नृत्य के घुँघुरु की मधुर आवाज कहा है। जैसे सूर्य तारा चन्द्र आदि के होने से उज्ज्वलता तथा चाँदनी की सत्ता है, वैसे ही ईश्वर से ही जीव की सत्ता है।

सुमित्रानन्दन पंत

छाया

कहो कौन—तरु=पेड़। अलि=सखि। विरक्ति=अप्रसन्नता, खिन्नता। विजन=जनरहित, एकान्त। दुखविधुर=दुख से व्याकुल।

कहो तुम दमयन्ती-सी कौन पेड़ के नीचे सोई हो? हे सखि, क्या तुम्हें भी कोई नल सा निष्ठुर पुरुष छोड़ गया है*। नीले पत्तों की शय्या पर अप्रसन्नता और मूर्छा के समान, एवं जुदाई के कारण

---

* विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती का विवाह निषध देश के राजा नल से हुआ था। विवाह के बाद एक दिन राजा नल अपने छोटे भाई पुष्कर के साथ जुआ खेलते खेलते राजपाट सब हार बैठे। तब उन्होंने जंगल की शरण ली। नल ने दमयन्ती को बहुत कहा कि वह जंगल के दुःखों को सहन करने के बजाय अपने पिता विदर्भ नरेश के यहाँ चली जाय, परन्तु वह इस विपत्ति के समय पति को किसी तरह छोड़ने को तैयार न हुई। जंगल में दोनों की इतनी

सुभद्रा कुमारी चौहान

समर्पण

सूखी सी—परिमल = सुगंध। पराग = रस।

हे नाथ ! यह सूखी सी अधखिली कली है, इसमें अभी न तो सुगध है और न रस ही है। किन्तु कुटिल भौंरों के चूमने का भी इस पर निशान नहीं है। भाव यह है कि यद्यपि सुगन्धिरहित और नीरस है तो भी पवित्र है।

तेरी अतुल—तेरी अतुल—महान—कृपा का बदला चुकाने के लिए ये कलियाँ नहीं लाई, अपितु तेरी पूजा के लिए केवल भक्ति भाव से इन्हें लाई हूँ।

प्रणय जल्पना—प्रणय = प्रेम। जल्पना = डींग, व्यर्थ की वकवाद। चिंत्य = विचार करने योग्य। मृदु = कोमल। अभिलाषा = इच्छा।

प्रेम की डींग, विचारने योग्य भाव, मधुर कल्पना, कोमल इच्छा और विजयी आशा (वह आशा जो अन्य सब भावों पर विजय पाती है, कि मेरा प्रेमी मुझ से अवश्य मिलेगा) ये सब मिलकर फुलवारी को सजा रही थीं।

किन्तु गर्व—किन्तु गर्व (अभिमान घमड) का एक झोंका आया, यद्यपि वह घमड तेरा ही था, तुझ से ही प्राप्त हुआ था पर मेरी सारी फुलवारी उजड गई, और मेरा सब कुछ बिगड गया।

बची हुई—बची हुई स्मृति (याद) की ये कलियाँ मैं इकट्ठी करके लाई हूँ। तुझे दिखाने, तुझे खुश करने और तुझे मनाने के लिए आई हूँ।

प्रेम भाव से—प्रेम के नाते से अथवा दया के नाते से ही इन्हें स्वीकार करो। मेरी छोटी सी भेंट जानकर इन्हें ठुकराना मत।

बालिका का परिचय

यह मेरी—यह बालिका मेरी गोदी की शोभा है अर्थात् मेरी गोदी इसके बैठने से सज जाती है, मेरे सुख और सुहाग की लाली है। मुझ गरीबिनी की यह शाही शान है, मुझे इसी पर घमंड है अथवा यही मेरी मतवाली मनोकामना—मन की इच्छा—है।

दीप शिखा—यह अँधेरे में दीये की शिखा है और घनघोर काली घटा मे उजियाली है। कमल में बँधे हुए भृ ग (भौंरे) के लिए यह ऊषा—सवेरे की लाली—है और पतझड म की हरियाली है—अर्थात् अँधेरे में जैसे दीये की चाँदनी, घनघोर काली घटा में जैसे बिजली की चमक, कमल में बँधे भौंरे को जैसे सवेरा तथा पतझड़ में की कहीं कहीं की जैसे हरियाली अच्छी लगती है, वैसे ही यह मेरे दिल को हर लेती है। कमल शाम को बंद हो जाता है और उसमें बैठा हुआ भौंरा भी उसके भीतर ही बंद हो जाता है। कमल के खुलने पर ही वह निकल सकता है इसलिए भौंरे को प्रात काल अच्छा लगता है।

सुधाधार—यह नीरस (सूखे) दिल के लिए अमृत की धारा है, ध्यान में लगे हुए तपस्वी की मस्ती है, गई हुई आँखों की जीती जागती ज्योति है और मनस्वी (मन को जीतने वाले) की सच्ची लगन है।

बीते हुए—नाटिका = खेल या एक प्रकार की रागिनी।

गुजरे हुए बालपन की यह खेल युक्त बगीची है, जिसमें वही मचलना तथा वही किलकना दिखाई पडता है, और यह हँसती हुई खेल या रागिनी है।

मेरा मन्दिर—पहले प्रयाग काशी आदि स्थानों में आरे या चक्र होते थे जिनके नीचे फल की आशा से लोग प्राण देते थे। ऐसे आरे या चक्र को करवट कहते थे, जैसे—'काशी करवट'।

यहीं मेरा मन्दिर है, यही मेरी मस्जिद है, यही मेरी पवित्र काशी है। यही मेरी पूजा, पाठ, ध्यान, जप, तप सब कुछ है और यही मेरे लिए घट घटवासी—परमात्मा—है।

कृष्ण चन्द्र—भगवान कृष्ण की बाललीला को अपने ही आँगन में देख लो तथा माता कौशल्या की प्रसन्नता को अपने मन में ही देख लो।

प्रभु ईसा—प्रभु ईसा की क्षमाशीलता (अपने शत्रुओं को भी क्षमा कर देने का स्वभाव) पैगम्बर का उच्च-विश्वास तथा महात्मा जिन (जैनियों के आदिगुरु) और गौतम बुद्ध की जीवों पर दया सब इसके पास देख लो।

परिचय—मुझ से इसका परिचय पूछ रहे हो, कहो, इसका परिचय मैं कैसे दूँ ? केवल वही इसका परिचय जान सकता है जिस का माता का सा दिल हो—जिसके दिल में माता की सी ममता हो।

भारतवर्ष के इतिहास की प्रश्नोत्तरी

[ले०—श्रीयुत जुगलकिशोर चतुर्वेदी हिन्दी प्रभाकर]

इस पुस्तक में पानीपत की तीसरी लड़ाई तक का भारत का इतिहास प्रश्न और उत्तर के रूप में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी रत्न परीक्षा में पिछले कई सालों में पूछे गये प्रश्न उत्तर सहित देकर विद्वान् लेखक ने पुस्तक को और भी उपयोगी बना दिया है। पिछले कई सालों में रत्न परीक्षा के पांचवें पत्र के प्राय सभी प्रश्न इस पुस्तक के अन्दर से आते रहे हैं। मूल्य ।≈
दूसरे संस्करण में इस पुस्तक को प० भगवद्दत्त के इतिहास के अनुसार शुद्ध कर दिया गया है।

पुस्तक पर श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी का नाम और दूसरा संस्करण देख कर लें।

महाराणा प्रताप की प्रश्नोत्तरी

[ले०—ला० सोमदत्त सूद, बी ए अध्यापक, कन्या महाविद्यालय, जालन्धर]

इस पुस्तक में महाराणा प्रताप का संक्षेप प्रश्न और उत्तर के रूप में दिया गया है। हिन्दी रत्न के विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की चीज़ है। पुस्तक लेते समय ला० सोमदत्त सूद का नाम अवश्य देख लें। मू० ।)

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

[ले०—डा० बहादुरचन्द शास्त्री, ऐम ए., ऐम ओ ऐल, डी लिट्]

हिन्दी मे प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों के भिन्न-भिन्न अर्थ तथा अपनी भाषा मे उनका प्रयोग किस तरह किया जाता है, यह सब जानने के लिए इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य खरीदिए। हिन्दीरत्न, हिन्दी भूषण और मैट्रिकुलेशन के प्रत्येक विद्यार्थी को यह पुस्तक जरूर पढ़नी चाहिए। मू० ॥)

हिन्दी-रत्न-निबन्धमाला

[ले०—बाबू गुलाबराय, ऐम ए, ऐल-ऐल बी]

इस पुस्तक मे निबन्धलेखन पर विस्तृत भूमिका के बाद हिन्दी-रत्न परीक्षा मे पिछले कई सालों में पूछे गये लगभग ६० विषयों पर श्रेणी विभाग के अनुसार निबन्ध लिखे गये हैं। भाषा बहुत ही सरल है। हिन्दी-रत्न के विद्यार्थियों को निबन्ध के लिए इस से अच्छी पुस्तक मिलना कठिन है। इसलिए इसकी एक प्रति अवश्य खरीदिए। पृष्ठ सख्या २५० के लगभग। मू० १) मात्र।